RNI -UPHIN/2008/29149 *ISSN 0975-8321*

वाङ्मय *त्रैमासिक*

अप्रैल 2013

सम्पादक :
डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद
मोबाइल : 9044918670

सह–सम्पादक :
डॉ. इकरार अहमद

उप–सम्पादक :
मो.आसिफ खान
मोबाइल : 9719304668

सलाहकार सम्पादक :
डॉ. मेराज अहमद

सम्पादकीय सम्पर्क :
205- ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड,
सिविल लाइन, अलीगढ़-202002
मोबाइल : 9044918670/9719304668
E-mail : vangmaya2007@yahoo.co.in
vangmaya @gmail .com

सहयोग राशि :
एक प्रति : 40 रु., वार्षिक शुल्क संस्थाओं के लिए : 200 रु., द्विवार्षिक शुल्क संस्थाओं के लिए : 400 रुपये, विशेष सहयोग : 501 रुपये, आजीवन सदस्य : 1500 रुपये, संस्थाओं के लिए आजीवन : 3,000/-

परामर्श मण्डल :

प्रो. रामकली सराफ (बी.एच.यू), मूलचन्द सोनकर (वाराणसी)
डॉ. धर्मेन्द्र सिंह (अलीगढ़), डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ (अलीगढ़)

सम्पादन सहयोग
डॉ. ए. के. पाण्डेय

कानूनी सलाहकार
एम. एच. खान, एडवोकेट, एम. ए. खान, एडवोकेट(हाईकोर्ट, इलाहाबाद)
डॉ. संजय सिंह, एडवोकेट(अलीगढ़)

सम्पादन/संचालन :

- *अनियतकालीन, अवैतनिक और अव्यावसायिक। रचनाकार की रचनाएँ उसके अपने विचार हैं। उनसे सम्पादक-प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। रचनाओं पर पारिश्रमिक देय नहीं होगा।*
- *किसी विवाद के लिए न्याय क्षेत्र अलीगढ़ होगा।*

शुल्क भेजने का पता :

*मनीआर्डर या बैंक ड्राफ़्ट : '**डॉ. फ़ीरोज़ अहमद या वाङ्मय**' के नाम*

205- ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड, सिविल लाइन, अलीगढ़-202002

रचनाकारों से.....

- रचनाएँ कृतिदेव 10 में टाइप कराकर ही भेजें।
- रचनाओं के साथ पोस्टकार्ड होने पर ही प्राप्ति की सूचना भेजी जाएगी।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ आने पर ही अस्वीकृति रचना लौटायी जा सकती है अन्यथा नष्ट कर दी जाएगी।
- कृतियों की समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजना अनिवार्य है।
- नमूना प्रति अवलोकन के लिए 40.00 रुपये के डाक टिकट या एम. ओ. भेजना अनिवार्य है।
- हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं की रचनाओं का वाङ्मय स्वागत करता है।

डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद की ओर से डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद द्वारा प्रकाशित,
डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद द्वारा मुद्रित तथा नवमान आफसेट प्रिंटर्स अलीगढ़ में
मुद्रित एवं ई-3, अब्दुल्लाह क्वाटर्स, लाल बहादुर शास्त्री मार्ग अलीगढ़ से प्रकाशित।
सम्पादक-डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद

अनुक्रम

खण्ड–एक : आलेख/शोध आलेख

प्रकाश
विष्णु प्रभाकर : निबंधों की दुनिया/7

डॉ. (श्रीमती) के. के. रवि
राजकमल चौधरी के काव्य में मानवीय संवेदना/14

कनुभाई करशनभाई भवा
नागार्जुन के काव्यों की प्रमुख विशेषताएं/19

डॉ. सैय्यद एकबाल मजाज़
डॉ. धर्मवीर भारती कृत अंधा युग के पात्र : एक विश्लेषण/24

डॉ. शंकर ए. राठौड
आज के संदर्भ में कबीरदास की ज़रूरत/34

डॉ. प्रमोद गोकुल पाटील
क्षेत्रीय भाषाओं पर भूमंडलीकरण का प्रभाव एक अनुशीलन/38

डॉ. पवन कुमार
राधेश्याम शुक्ल के दोहा साहित्य में महानगरीय बोध/42

डॉ. रामचंद्र माली
अधूरेपन की त्रासद गाथा में उलझे प्रेम का चित्रण : मामूली चीज़ों का देवता/47

अनीश कुमार
नरेन्द्र कोहली के रामकथात्मक उपन्यासों में सामाजिक चेतना/53

डॉ. जाहिदा जबीन
कश्मीर के हिंदी कवि : एक अध्ययन/57

प्रा. नरसिंह द रानसरजे
समकालीन हिन्दी उपन्यास में स्त्री-विमर्श/64

खण्ड–दो : कहानी/लघु कथा/ग़ज़ल/कविता/समीक्षा

मेराज अहमद
अपना परिवार/66

अर्चना ठाकुर
उत्सव, सेकेंड मैरिज एवं शोर/70

सुधा ओम ढींगरा
अनुत्तरित, अनुसरण, उपरांत एवं मर्यादा/73

सुकृता पाल कुमार
नीरवता को तोड़ते हुए एवं परिज्ञान/76

डॉ. डी. एम. मिश्र
ग़ज़ल/77

डॉ. दया दीक्षित
रहेंगे निशां हमारे/78

वाङ्मय का अगला विशेषांक

(आदिवासी कथा साहित्य पर केन्द्रित होगा।)

पत्रिका जून माह में प्रकाशित होगी।
सम्भावित मूल्य–150/ प्रति अंक

सम्पादकीय

आजकल शिक्षा प्रणाली में शिक्षा के प्रति अध्यापकों में काफी बदलाव आ गया है ज्यादातर अध्यापकों में आजकल उतनी निष्ठा नहीं रह गई जितनी पहले थी, न ही विद्यार्थियों के प्रति उतना लगाव। कारण है कि शिक्षकों के मूल्यों में परिवर्तन आ गया है। पहले शिक्षक विद्यार्थियों के लिए सुख, सम्पत्ति सब कुछ त्याग कर देते थे लेकिन अब ऐसा देखने को नहीं मिल रहा है। आज यह प्रणाली अधिक धन कमाने का स्रोत बन गई है। आज छात्रों के समक्ष ऐसे बहुत कम शिक्षक है जिनसे वे प्रेरित होकर कुछ नया कार्य कर सकते हो।

विष्णु प्रभाकर के जन्म शती के अवसर पर प्रकाश जी का महत्त्वपूर्ण आलेख 'विष्णु प्रभाकर : निबंधों की दुनिया' इस अंक का पहला आलेख है। वे प्रमुखतः जीवनी लेखक हैं, उनके निबंधों की संख्या बहुत कम है परन्तु जितना भी लिखा बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। लेखक ने इसी तथ्य की पुष्टि उनके निबंध-संग्रह 'कलाकार का सत्य' में संग्रहीत निबंधों जैसे 'अश्लीलता कहा', शिक्षा का उद्देश्य', 'शब्द और अर्थ', 'अन्तर की भाषा' में जहां आदर्श भावात्मक चिंतन का परिचय दिया है वहीं 'क्या है लोक-साहित्य' में अनुभूत जीवन और राष्ट्रीय एकता और हिन्दी में भाषा और संस्कृति एक-दूसरे से सदा प्रभावित है। इस तथ्य को प्रस्तुत किया है। डॉ. के. के. रवि के लेख 'राजकमल चौधरी के काव्य में मानवीय संवेदना' के अन्तर्गत चौधरी की रचनाओं में व्यक्त मानवतावादी, समाजवादी, जनवादी मूल्यों के प्रति जो संवेदना व्यक्त हुई है उसको लेखिका ने अपने आलेख में व्यक्त किया है। जैसे पूर्वजों द्वारा स्थापित पारलैकिक आस्थाएं वैश्यावृत्ति, राजनेता की मनोवृत्ति आदि को देखा है। 'नागार्जुन के काव्यों की प्रमुख विशेषताएं' कनुभाई द्वारा रचित है। इस लेख में नागार्जुन के काव्य युग जीवन का जो यथार्थ चित्रण है उसे विस्तार से व्यक्त किया गया है। डॉ. धर्मवीर भारती कृत अंधा युग के पात्र : एक विश्लेषण, डॉ. सैयद एकबाल मजाज़ का लेख है। इसमें लेखक ने अंधा युग के पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रों को दो वर्गों में विभक्त किया है। इसी लेख में लेखक ने सहज मानवीय पात्रों से लेकर पूर्णतया दिव्य पात्रों का समावेश कर उत्कृष्ट ढंग से उसका विश्लेषण किया है। डॉ. शंकर राठौड 'आज के संदर्भ में कबीर की ज़रूरत' अत्यंत महत्त्वपूर्ण आलेख है। जो भक्तिकाल पर अभी भी रुचि लोगों की सुधी जिज्ञासुओं की बनी है क्योंकि आज के वर्ग की सबसे कम रुचि भक्ति काल एवं उसके कवियों की ओर ही दिखाई देती है। इसमें लेखक ने कबीर का दार्शनिक भाव, समाज सुधारक आदि सभी रूपों को उदाहरणों के द्वारा व्याख्यायित किया है। क्षेत्रीय भाषाओं पर भूमण्डलीकरण का प्रभाव एक अनुशीलन, डॉ. प्रमोद का लेख है। जो सर्वाधिक दुष्प्रभाव भूमण्डलीकरण से हुआ है। वह क्षेत्रीय भाषाओं के क्षेत्र में हुआ है। लेखक का मानना है कि एक यंत्र सारे घर के कामों को कर तो सकता है परन्तु मां के हाथ की बनी रोटी और लोरी की जगह कोई नहीं ले सकता और ऐसी लोरी अपने प्रादेशिक भाषा से ही जुड़ सकती है और किसी से नहीं। डॉ. पवन कुमार के लेख में 'राधेश्याम शुक्ल के दोहा साहित्य में महानगरीय बोध' में इस तथ्य की पुष्टि

की गई है कि नगरों और महानगरों के प्रति लोगों में आकर्षण अवश्य बढ़ा है परन्तु शहर में पूरा जीवन बिताने के बाद उन्हें अपने गांव की संस्कृति और मानवीय मूल्यों की याद बार-बार आती है। इस लेख में महानगरी बोध की विसंगतियों को बड़े ही मार्मिक रूप में चित्रित किया गया है। डॉ. रामचन्द्र माली का लेख 'अधूरेपन की त्रासद गाथा में उलझे प्रेम का चित्रणः मामूली चीज़ों का देवता' नामक शीर्षक से है जो अरूंधती राय द्वारा लिखा गया उपन्यास 'गॉड ऑफ स्माल थिंग्स' का हिन्दी अनुवाद है। ये उपन्यास बुकर सम्मान से सम्मानित है। उपन्यास का कथानक प्रकृति की गोद में बसा, सागर से घिरा केरल प्रांत है जिसके छोटे से शहर 'अयमुमन' में जीने वाले ईसाई, हिन्दू समाज की जाति-व्यवस्था में विभाजित मानसिकता को दर्शाया गया है। अनीश कुमार का लेख नरेन्द्र कोहली के रामकथात्मक उपन्यासों में सामाजिक चेतना' में सामाजिक चेतना को स्पष्ट करते हुए लेखक ने हिन्दी कथा साहित्य में नरेन्द्र कोहली के रामकथा, महासमर, अवसर, संघर्ष की ओर, साक्षात्कार, पृष्ठभूमि आदि उपन्यासों में अभिव्यक्त अनैतिकता, मूल्यहीनता, अनिश्चितता आदि सामाजिक बोध को दर्शाया गया है। डॉ. जाहिदा जबीन का आलेख 'कश्मीर के हिन्दी कवि : एक अध्ययन' में कश्मीर की साहित्यिक विरासत की झांकी प्रस्तुत करता है। अहिन्दी क्षेत्र कश्मीर में कालीदास, कल्हण, भामह, वामन, आनंदवर्द्धन जैसे सिद्धहस्त रचनाकारों के शानदार इतिहास को समेटे हुए हैं। लखिका ने कश्मीर के कवियों का उल्लेख किया है। कश्मीर के कवियों की कविताओं में सभी प्रकार के चित्रण मिलते हैं। डॉ. नरसिंह का आलेख 'समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श' आलेख में चाक, झूलानट, अल्मा कबूतरी, आवां, कठगुलाब, एक पत्नी के नोट्स आदि उपन्यासों में नारी चरित्रों को दर्शाया है। जो अपनी अस्मिता व अधिकारों के प्रति सजग है।

मेराज अहमद की कहानी 'अपना परिवार' आज के संयुक्त परिवार की समस्याओं को लेकर लिखी गई मार्मिक कहानी है। प्रत्येक माता-पिता को यह अरमान होते हैं कि पुत्र-वधू के आने पर पूरे परिवार को सुख और समृद्धि प्राप्त होगी। ऐसी सभी को आशा रहती है। परन्तु जब टूटती है तो पीड़ा की अनुभूति होती है, उसका लेखक ने सशक्त रूप में चित्रण अपनी कहानी में किया है। अर्चना ठाकुर कृत उत्सव, सेकेन्ड मैरिज एवं शोर तीन लघु कथाएं हैं जिनमें उत्सव में धर्म की आड़ में फैली अनैतिकता को उठाया गया है। सेकेन्ड मैरिज में आसाम की संस्कृति के बारे में बताया गया है कि लड़की प्रथम बार जब ऋतुकाल में प्रवेश करती है तो वे समूह भोज का आयोजन करते हैं। उसी को सेकेन्ड मैरिज कहते हैं। शोर कहानी में ध्वनि प्रदूषण पर लिखी कहानी है। सुधा ओम ढींगरा की चार लघुकथाएं है। जिनमें पहली अनुत्तरित है जिसमें पद और धर्म किस प्रकार एक-दूसरे से जुड़े है। अनुसरण में पिता के कर्मों का पुत्र किस प्रकार अनुसरण करता है उसका वर्णन किया है। उपरांत में जीवन व प्रकृति का संबंध, मर्यादा में स्त्री की मर्यादा भी उतनी है जितनी पुरुष की जैसे मुद्दों पर लेखिका ने लेखनी चलाई है। इसे अलावा सुकृता की दो कविता है और डी. एम. मिश्र की ग़ज़ल प्रस्तुत अंक में है। इन सब के अतिरिक्त नासिरा शर्मा कृत पारिजात उपन्यास पर दया दीक्षित की समीक्षा काफी लम्बी है। जिसकी महत्ता पढ़कर और अधिक स्पष्ट होगी। ऐसा मेरा विश्वास है।

फ़ीरोज़

विष्णु प्रभाकर : निबंधों की दुनिया

प्रकाश

विष्णु प्रभाकर हिंदी साहित्य में एक सशक्त कथाकार, उपन्यासकार और जीवनी लेखक के रूप में जाने-पहचाने जाते हैं। उनका कथा-संसार जितना प्रभावशाली है उतना व्यापक भी। बांग्ला के महान् लेखक शरतचंद्र के जीवनी लेखक के रूप में भी उनकी विशिष्ट पहचान है। स्वयं बांग्ला में भी, जिस भाषा के लेखक शरतचंद्र थे, उनकी वैसी सशक्त और प्रामाणिक जीवनी नहीं लिखी गई, जैसी हिंदी में विष्णु प्रभाकर ने वर्षों गहन शोध का अध्ययन कर लिखी।

विष्णु प्रभाकर का लेखन विविध दिशाओं में और विपुल है। कथा, उपन्यास, जीवनी आदि के साथ उन्होंने नाटक, एकांकी, रेडियो रूपक और बाल-साहित्य भी बड़े पैमाने पर लिखा। उनके निबंधों की भी एक छोटी-सी दुनिया है, जिसमें तमाम विषयों पर उनके विचार व्यवस्थित ढंग से मौजूद हैं। हालांकि उन्होंने इस विधा पर बहुत ज्यादा नहीं लिखा है, लेकिन जितना भी लिखा, उसका अपना महत्त्व है।

'कलाकार का सत्य' में विष्णु जी के कुछ श्रेष्ठ निबंध संगृहीत हैं। इस पुस्तक में संगृहीत निबंधों को हम उनके कुछ प्रतिनिधि निबंध भी मान सकते हैं। 'कलाकार का सत्य' इस पुस्तक की केंद्रीय थीम है। एक लेखक जब अपनी और दूसरों की कला के सत्य का बयान-बखान करता है, तो वह 'लेखन' को अपने लेखन के केंद्र में ले आने का उपक्रम करता है। इस उपक्रम में 'कलाकार का सत्य' उद्घाटित हो जाता हैं यही उद्घाटित सत्य प्रत्येक लेखक का प्रतिनिधि सत्य है। विष्णु प्रभाकर अपने निबंध साहित्य में इस सत्य को उद्घाटित करने के लिए निबंध-लेखन की विभिन्न शैलियों को अपनाते हैं।

विष्णु जी ने विभिन्न-संगोष्ठी-समारोहों, उद्घाटन और अध्यक्षीय भाषणों में समय-समय पर जो वक्तव्य दिए हैं, लिखित अथवा मौखिक रूप से, उन सबको संपादित कर उन्होंने उनको निबंधात्मक शक्ल देने की कोशिश की है। 'कलाकार का सत्य' पुस्तक के प्रथम खण्ड में ऐसी अनेक निबंधात्मक सामग्री शामिल है। जाहिर है इन सभी निबंधों का क्षेत्र सार्वजनिक है। दूसरे खंड के निबंध ऐसे हैं, लेखक के अनुसार ''जिनका संबंध नितांत लेखक से''[1] है और जो लेखक की ''साहित्यिक यात्रा पर यत्किंचित प्रकाश डालते हैं।''[2]

लेखक के अनुसार, इन रचनाओं के विषय उनके ''नितांत निजी विचार हैं। इसकी शक्ति का स्रोत ज्ञान उतना नहीं है, जितनी अनुभूति और वह अपने-अपने आकाश की तरह अपनी-अपनी होती हैं पर नितांत निजी का अर्थ निजी एकांत नहीं हैं अनुभूति समाज के माध्यम से ही प्राप्त होती है। अपने को जानना दूसरे से जुड़कर ही संभव होता है, यह 'दूसरा' ही तो समाज है।''[3]

विष्णु जी भलीभांति जानते हैं कि यह जो 'दूसरा' यानी 'समाज' है और जिससे कि कलाकार को अपनी अनुभूति प्राप्त करने के लिए अनिवार्यतः जुड़ना होता है वह जुड़ाव साहित्य को विशुद्ध कला और सौंदर्यशास्त्रीय अवधारणाओं से मुक्त करके ही पाया जा सकता है। इसलिए साहित्य का अध्ययन भी विशुद्ध कला और सौंदर्यशास्त्रीय मान्यताओं के आधार पर नहीं हो सकता। साहित्य

का सत्य अनेक सामाजिक, राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से संबद्ध रहता है।

साहित्य का सौंदर्यशास्त्र 'पूर्ण कला' की पैरवी करते नहीं अघाता। उसके लिए 'पूर्ण कला' की प्राप्ति में ही 'पूर्ण सत्य' की प्राप्ति निहित है, लेकिन विष्णु जी का कलाकार जड़ नहीं है, वह भविष्योन्मुखी और निरंतर गतिशील है। इसलिए कलाकार का सत्य भी कभी पूर्ण होकर जड़ नहीं होता। वह सत्य का निरंतर अन्वेषी है। इसलिए विष्णु जी कलाकार के सत्य को महत्व नहीं देते, बल्कि सत्य की निरंतर तलाश उनके लिए महत्त्वपूर्ण है। वे लिखते हैं- ''वैज्ञानिक युग में सत्य महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण है सत्य की तलाश और यही तलाश परातन को भी नए अर्थ दे सकती है।''[4]

विष्णु जी 'कलाकार का सत्य' निबंध में एक ओर स्वयं एक कलाकार के रूप में अपनी बात कहते हैं, दूसरी ओर एक सामान्य कलाकार को संबोधित भी करते हैं। वे 'कलाकार' और 'कला-रचना' के गूढ़ अर्थों में उतरते हुए साहित्य को पहले 'अर्थ' मानने का आग्रह करते हैं, 'शब्द' को गौण। ठीक यही मत निर्मल वर्मा का रहा है, ''साहित्यकार अर्थ की रचना करता है शब्द की नहीं।''[5] पर विष्णु प्रभाकर और निर्मल वर्मा एक विशेष कारण से एकमत हैं। दोनों वरिष्ठ लेखकों के लिए 'मूल्य' का प्रश्न निर्णायक है। निर्मल जी कहते हैं, ''अर्थ जुड़े हैं मानव-मूल्यों से। विज्ञान मात्र शब्द है, ज्ञान है। साहित्य और कला उसे मूल्यों से जोड़ते हैं।''[6] इसी बात को दूसरे शब्दों में विष्णु जी कहते हैं, ''कला-साहित्य, नृत्य-नाट्य, संगीत हर कहीं मूल्यबोध तत्त्व विद्यमान है। नहीं तो वह अर्थहीन है।''[7] क्या साहित्य या कला में जो मूल्यबोधक तत्त्व है, वही साहित्यकार या कलाकार का सत्य है? विष्णु जी की माने तो संभवतः नहीं। प्रत्येक युग और समाज के मूल्य चूंकि निरंतर गतिशील है, परिवर्तन ही उनका आधार है, अतः सत्य भी शायद जड़ीभूत और एकांगी नहीं हो सकता।

''तो सत्य है क्या?''-प्रभाकर सवाल उठाते हैं-''क्या इसको किसी ने जान लिया है। जान लिया होता तो ये नाना मत-मतांतर, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, नाना रूप ईश्वर, जातियां, समूह, दल क्यों होते? इससे स्पष्ट है सत्य अभी भी अजाना है और जब तक सत्य अजाना है तभी तक साहित्य है। क्योंकि प्रश्न नहीं रहेगा तो साहित्य का आधार ही नष्ट हो जाएगा।''[8]

साहित्य का कलाकार के सत्य को जानने के लिए निश्चय ही परिवर्तन और नए मूल्य-बोधों के साथ तालमेल बिठाते हुए सत्य की अनजानी यात्रा पर निकल पड़ना होगा। मूल्य-बोधों के परिवर्तन सातत्य में सत्य की तलाश-यही कलाकार का मार्ग है।

इस दुर्गम मार्ग में कलाकार को पीड़ा से शक्ति मिलती है। विष्णु जी मानते हैं कि दर्द ही कलाकार को पवित्र भी करता है। दर्द सहने की यातना से गुज़रकर कोई सच्चा कलाकार बन पाता है। 'अज्ञेय' ने इस बात को कविता में कुछ यूं कहा था-''दुख जीवन को मांजता है।''

विष्णु प्रभाकर साहित्य की मानवतावादी भूमिका पर बल देते हैं। पीड़ा से गुज़रते हुए निरंतर सत्य की तलाश साहित्य और साहित्यकार को मानवतावादी बनाती है। मानवतावादी साहित्य और साहित्यकार संवेदना का विस्तार करता है। वह संवेदना मनुष्य को समृद्धतर बनाता है। एक मानवतावादी साहित्यकार होने के कारण ही विष्णु जी परिवर्तन के लिए खूनी क्रांति को आवश्यक नहीं मानते। उनके अनुसार क्रांति के लिए बाहरी हलचलें उतनी ज़रूरी नहीं जितनी कि आंतरिक तड़प और बेचैनी। अपने एक निबंध 'मानवता पर मंडराते खतरे और साहित्य' में उन्होंने लिखा हैं- ''क्रांति का अर्थ रक्तपात नहीं है। वह हो सकता है, पर वह मूल अर्थ नहीं है कायापलट, आमूल-चूल परिवर्तन।.....बेचैनी और प्रश्नाकुलता क्रांति के महत्त्वपूर्ण उपादान हैं। उनके बिना क्रांति नहीं हो सकती।''[9] यहां निश्चय ही विष्णु प्रभाकर आंतरिक बदलाव के बिना किसी प्रकार

की क्रांति को संभव नहीं पाते। यह आंतरिक बदलाव मनुष्य की संवेदनशीलता के प्रसार से संभव होगा और साहित्य मनुष्य की संवेदनशीलता के प्रसार का कार्य ही अपना प्राथमिक लक्ष्य मानकर करता है।

विष्णु जी वास्तविक मानवतावादी साहित्य को व्यक्ति की नहीं, बल्कि समूह की अभिव्यक्ति मानते हैं। व्यक्ति की अनुभूति समूह से जुड़कर और व्यापक हो जाती है और इस प्रकार वह अनुभूति सामाजिक चेतना का वाहक हो जाती हैं। जिस साहित्यकार के पास ऐसी दिव्य अनुभूति का कोष है, ऐसे साहित्यकार को विष्णु जी 'महाकाल का स्वामी' और 'अपने युग को जीने वाला' साहित्यकार बताते हैं, 'जिसकी वाणी में उसका युग भी बोलता है।

आज के विषम समय में आस्था और अनास्था का द्वंद्व मानवता के सामने सबसे बड़े संकट के रूप में खड़ा है। बेपनाह वैज्ञानिक और तकनीकी विकास ने इस संकट को जन्म दिया है। विज्ञान और तकनीक के एकतरफा विकास को आध्यात्मिक मूल्यों के वजन से संतुलित करना होगा। विष्णु प्रभाकर अध्यात्म और विज्ञान जैसी दो विपरीत शक्तियों के समन्वय में आधुनिक मनुष्य की मुक्ति का स्वप्न देखते हैं।

विष्णु जी का एक महत्त्वपूर्ण निबंध है-'शांति और सम्प्रीति'। इस निबंध में वे सृजन और संस्कृति के क्षेत्र में शांति और सम्प्रीति की परंपरा और वर्तमान अनिवार्यता को व्यापक भारतीय वाड.मय के परिप्रेक्ष्य में सोदाहरण व्याख्यायित करते हैं। उनके अनुसार, ''शांति और सम्प्रीति दो शाश्वत मानव-मूल्य हैं। ये मूल्य ही हमारी परंपरा हैं, ये ही हमारी पैतृक संपत्ति हैं।''[10] विष्णु जी इन शाश्वत मूल्यों की खोज करते हुए वेदों, उपनिषदों और रामायण से लेकर कबीर, बुद्ध, नानक, फरीद, चंडीदास, वसवेश्वर, रैदास, नामदेव, आखा भगत, सहजोबाई आदि के होते हुए रवीन्द्र नाथ, सुब्रह्मण्यम भारती, इकबाल, काजी नजरूल इस्लाम, मुक्तिबोध और प्रभाकर माचवे तक आते हैं। इन दो जीवन-मूल्यों की अविरल परंपरा उन्हें साहित्य, कला और संस्कृति में विन्यस्त दिखाई देती है, लेकिन इन मूल्यों के उन्मुक्त विकास और प्रसार के लिए सृजन को स्वच्छंदता भी मिलनी चाहिए। किसी तरह का अनपेक्षित अंकुश उसकी चेतना को कुंठित कर सकता है। विष्णु प्रभाकर अकुंठ भाव से सृजन की स्वतंत्रता की हिमायत करते हैं। 'सृजन और अंकुश' निबंध में वे सृजन-कर्म को प्रभावित करने वाले ऐसे अनेक अंकुशों पर बहस करते हैं जो वैचारिक जगत में विवादों का केंद्र बने हुए हैं।

एक विवादास्पद अंकुश के रूप में विष्णु जी 'वैचारिक प्रतिबद्धता' का ज़िक्र करते हैं। 'वैचारिक प्रतिबद्धता' पद को दरकिनार कर मार्क्सवादी साहित्य-चिंतन शायद संभव नहीं हो सकता। विष्णु जी ऐसी 'प्रतिबद्धता' को सर्जक के लिए एक अंकुश मानते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि ''विचार विशेष के प्रतिबद्धता हमें सीमित करती प्रतिबन्धित करती है। यह व्यक्ति का मौलिक अधिकार है कि वह किसी भी विचारधारा को स्वीकार करने को स्वतंत्र रहे। हमें उसके विवेक पर भरोसा करना चाहिए।''[11]

'वैचारिक प्रतिबद्धता' के 'निषेध' से तथाकथित प्रगतिशील लेखकों की जमात विष्णु जी को चाहे तो दक्षिणपंथ का प्रवक्ता कहकर बहिष्कृत कर सकती है, लेकिन विष्णु जी बगैर किसी तथाकथित 'प्रतिबद्धता' में गिरफ्तार हुए रचना और कर्म में शाश्वत मानव-मूल्यों को जीने वाले ईमानदार और संवेदनशील लेखक थे। कोई बाह्य आरोपित विचारधारा नहीं, उनका आंतरिक रचनात्मक विवेक उन्हें प्रतिबद्ध बनाता था।

वैचारिक प्रतिबद्धता के अंकुश के अलावा वे संचार साधनों से प्रसारित-प्रचारित होने के अंकुश को भी गैरज़रूरी मानते थे। पुरस्कार-सुविधा के बारे में उनका मत था कि यदि सर्जक अपने विवेक

का सक्षम प्रयोग कर सके, तो यह सुविधा उसको दुर्बल कर उस पर अपना अंकुश नहीं लगा पाएगी।

उक्त निबंध में विष्णु जी साहित्य पर राजशक्ति के अंकुश की भी सख्त मुखालफत करते हैं। सर्जक राजशक्ति द्वारा आदेशित-आरोपित और संरक्षित नहीं किया जा सकता। विष्णु जी का मानना है कि सर्जक का दायित्व जन के प्रति है। वह जनता का जागरूक प्रहरी है। वह तीसरी आँख है।

विष्णु जी का एक सुंदर निबंध है-'आज का साहित्य और सार्वकालिक साहित्य।' इसमें वे समकालिकता और सार्वकालिकता के संबंध और भेदों पर किस्से-कहानियों के रोचक उदाहरणों के साथ अपना चिंतन प्रस्तुत करते हैं। इसमें जब वे सार्वकालिक या कालजयी साहित्य के वैशिष्ट्य की बात करते हैं तो वर्तमान और सामयिकता को उसमें अंतर्भुक्त कर लेते हैं। उनके अनुसार कालजयी कृतियां एक सीमा तक अपने समकालीन जीवन के स्थूल यथार्थ से जुड़ी रहती हैं किंतु वे उसका अतिक्रमण भी करती हैं। इस अर्थ में वास्तविक कालजयी साहित्य समसामयिक साहित्य भी है। ऐसे साहित्य की एक खासियत यह भी है कि उसमें पराई और अनुभूति की आत्मसात् करने की विलक्षण क्षमता होती है।

एक अन्य निबंध में विष्णु जी अभिव्यक्ति के प्रश्न पर विचार करते हुए साहित्य को 'मानवता की बंधनहीन अभिव्यक्ति' के रूप में रेखांकित करते हैं। इसी शीर्षक से 'संचेतना' (सं. महीप सिंह) में लिखे गए एक पत्रात्मक निबंध में विष्णु जी कहते हैं कि ''जहां अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं है, वहां साहित्य भी नहीं है।''[12]

लेकिन अभिव्यक्ति की यह स्वतंत्रता लेखकीय उच्छृंखलता का पर्याय तो नहीं? कहीं यह बंधनहीन तो नहीं कि अनैतिक हदों को छूने लगे? शायद ऐसा हो सकता हैं इसलिए विष्णु जी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ लेखक के दायित्व भी सुनिश्चित कर देते हैं। उनके अनुसार लेखक का पहला दायित्व अपनी कला और अपने अनुभवों के प्रति है। यह दायित्व प्रकारांतर से उसे अभिव्यक्ति से जोड़ देता है, जहां से लेखक के सामाजिक दायित्व की सृष्टि होती है। अर्थात् लेखक का सामाजिक दायित्व उसे उच्छृंखल और अनैतिक दायित्व की सृष्टि होती है। कुल मिलाकर विष्णु जी दायित्वों सहित लेखक की पूर्ण स्वतंत्रता के समर्थक हैं। वे उस पर किसी प्रकार की सत्ता का अंकुश नहीं चाहते, सिवाय लेखक की अपनी चेतना के अंकुश के।

आज उत्तर आधुनिक विमर्शों के जारी दौर में आधुनिकता पर चर्चा और बहस लगभग हाशिए पर चली गई है। आधुनिकता पर पढ़ने-गुनने के लिए प्रायः पिछली पीढ़ियों के चिंतन पर निर्भर होना पड़ रहा है। सौभाग्य से विष्णु प्रभाकर भी थोड़ा चिंतन आधुनिकता और उसके सही स्वरूप पर हमारे पास उपलब्ध है। उनका एक छोटा-सा निबंध है-'आधुनिकता : सही स्वरूप।' इस निबंध में वे आधुनिकता को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं कि ''आधुनिकता न कोई सिद्धांत है, न सांचा ही। वह एक प्रवहमान प्रक्रिया का जिज्ञासा और प्रश्नाकुलता का तर्कसंगत परिणाम है। निरंतर नये के प्रति सजग होना ही किसी को आधुनिक बनाता है, किसी पूर्वी या पश्चिमी सभ्यता से, किसी सिद्धांत-विशेष से जुड़ना नही। आधुनिकता मूल्यहीनता भी नहीं है। वह तो सही मूल्यांकन की प्रेरणा देती है।''[13]

इस उद्धरण में पहली महत्त्वपूर्ण बात यह है कि विष्णु जी ने आधुनिकता को एक स्थिर सिद्धांत और सांचे के रूप में सिरे से खारिज कर दिया है। इस तरह वह 'एक प्रवाहमान प्रक्रिया', 'जिज्ञासा' और 'प्रश्नाकूलता का तर्कसंगत परिणाम है।' ये समस्त 'पद' गतिशीलता और नवीनता की ओर आकर्षित होते है, लेकिन यह गतिशील नवीन पुनः 'पूरब' या 'पश्चिम' के सिद्धांत-विशेष से संपृक्त नहीं होता। कुल मिलाकर विष्णु जी किसी प्रकार की 'जड़' दृष्टि से आधुनिकता को देखने को राजी नहीं। यह आधुनिकता को देखने का विष्णु जी का ढंग हैं-जिसे आधुनिकता का सही भाष्य

करने वाले सच्चे चिंतकों के चिंतन के समतुल्य रखा जा सकता हैं दूसरी ओर जिन लोगों के लिए आधुनिकता का अर्थ मूल्यहीन होने की छूट है, उन्हें विष्णु जी बताते हैं कि नहीं, ''वह तो सही मूल्यांकन की प्रेरणा देती है।''

विष्णु प्रभाकर ने साहित्य के विभिन्न पक्षों पर विचार किया है। साहित्य में श्लीलता-अश्लीलता जैसे मुद्दों पर भी उन्होंने लेखनी चलाई है। 'अश्लीलता कहां' शीर्षक अपने एक निबंध में अश्लीलता को व्याख्यायित करते हुए उसका केंद्र 'वस्तु' में नहीं, बल्कि 'वस्तु' को देखने वाली 'दृष्टि' में स्थापित माना है। साथ ही उनका यह भी मानना है कि ''जहां असुंदर प्रदर्शन है, वहीं अश्लीलता है। जहां सौन्दर्यानुभूति है वहां अश्लीलता नहीं आ सकती।....अश्लीलता प्रदर्शन की सस्ती भावना में है, अतः असुंदरता में है।'' (कलाकार का सत्य, पृ. 101)। वस्तुतः यदि द्रष्टा की सृष्टि सुंदर है, तो उसमें सत्य का वास होगा और चूंकि सत्य प्रदर्शन की वस्तु नहीं, इसलिए वह अश्लील नहीं हो सकता, वह सिर्फ सद्साहित्य हो सकता है।

इसी प्रकार 'शिक्षा का उद्देश्य', 'शब्द और अर्थ', 'अंतर की भाषा' आदि जैसे अनेक निबंध लेखक की आदर्श मनोभूति और भावात्मक चिंतन का परिचय देते हैं। 'शिक्षा का उद्देश्य' निबंध में लेखक ज्ञान और विद्या-प्राप्ति को शिक्षा का लक्ष्य नहीं मानता, बल्कि विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करके 'हो' क्या जाता है, ''वह 'होना' ही शिक्षा है....संस्कृति है और....साहित्य का उपादान है।'' जाहिर है इस 'होने' का संबंध संस्कृति और साहित्य से जुड़ने से शिक्षा का संबंध मानवीय मूल्यवत्ता से स्वतः संपृक्त हो जाता है।

'अर्थ और शब्द' निबंध में लेखक का संपृक्त चिंतन शब्द को दरकिनार कर अर्थ से शुरू होता है। वह शब्द को ढूंढते हुए उसके प्रारंभिक रूप की ओर जाता है। वहां उसे शब्द नहीं मिलता, अर्थ मिलता है। वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि ''पहले अर्थ था। अर्थ को शब्द दिया गया था।'' (कलाकार का सत्य, पृ. 121)। यह सही है क्योंकि मनुष्य की आदिम भाषा शब्द नहीं, संकेत और इशारे थे और वे मूलतः 'अर्थ' ही थे। उन अर्थों को हमने शब्द दिए और आज उन शब्दों में ही पुनः अर्थ की खोज करते है।

विष्णु प्रभाकर अपने भाषणों- लेखों आदि में बार-बार यह ज़िक्र करते हैं कि उनके लेखन-कर्म की नींव में बचपन में सुनी लोक-कथाओं का बड़ा हाथ है। वे साहित्य के गुणों की तलाश करते हुए लोक-साहित्य की दुनिया में भ्रमण कर आते है। 'क्या है लोक-साहित्य' नामक एक निबंध में लोक-साहित्य के संबंध में उनकी स्थापना है कि यह साहित्य किताबी ज्ञान भर नहीं है, बल्कि अनुभूत जीवन हैं उसमें कल्पना और जिज्ञासा का बड़ा उपयोग है। वह आरोपित नहीं, ''इसलिए उसमें कुंवारी छुवन और माटी की गंध है।'' (कलाकार का सत्य, पृ. 75)। लोक-साहित्य कल्पित है, फिर भी यथार्थ है। यथार्थ है, फिर भी यथार्थ का अतिक्रमण है। विष्णु जी के लिए लोक-साहित्य के मायने शायद यही है।

विष्णु जी एक राष्ट्रवादी लेखक थे। उन्होंने राष्ट्रीय एकता के प्रश्न पर विस्तार से विचार किया है। साथ ही राष्ट्रीय एकता की एक महत्त्वपूर्ण सूत्र हिंदी भाषा पर भी। 'राष्ट्रीय एकता और हिंदी' नामक एक निबंध में उन्होंने भाषा और संस्कृति को एक-दूसरे से अनिवार्यतः प्रभावित होते दिखाया है। वे कहते हैं कि ''हम अपनी संस्कृति को अपनी भाषा के माध्यम से ही पहचान सकते हैं।'' (कलाकार का सत्य, पृ. 149) और यह कौन नहीं जानता कि किसी देश की संस्कृति ही उस देश की एकता को एकसूत्र में बाँधे रखती है। विष्णु जी इस लेख में पोलैंड के प्रोफेसर मारिया शिष्टोफ किर्स्की को उद्धृत करते हैं कि ''भारत की आत्मा को पहचानने के लिए हिंदी भाषा का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है....।''(कलाकार का सत्य, पृ. 150) जिस देश की आत्मा की पहचान हिंदी से जुड़ी

हो, उस देश की अस्मिता को विष्णु जी अंग्रेज़ी रंग से रंगा कैसे देख सकते हैं? इसलिए वे साफ इन्कार करते हैं कि ''अंग्रेज़ी हमारी अस्मिता की, हमारी संस्कृति की भाषा नहीं है।'' (वही, पृ. 150)। विष्णु जी की राष्ट्रीय चेतना भाषा के मामले में काफी प्रखर है।

भाषा का प्रश्न है तो स्वभावतः भाषा के साहित्य के अनुवाद की समस्या भी उठ खड़ी होगी क्योंकि व्यापक और विविधभाषी समाज तक पहुंच बनाने के लिए एक भाषा के साहित्य को दूसरी भाषा में अनूदित होकर उसका अंग बनना होगा, लेकिन अनुवाद का काम आसान नहीं है। विष्णु जी ने 'अनुवाद की समस्या' शीर्षक निबंध में अनुवाद के अनेक मुद्दों पर अपनी राय जाहिर की है। वे अनुवाद को एक ऐसी कला मानते हैं जो दूसरी किसी कला से कमतर या हीन नहीं है। वे हमारी इस आम मान्यता का निराकरण करते हैं कि अनुवाद द्वितीय श्रेणी की कला है, और यह स्थापना भी करते हैं कि अनुवादक को स्रोत और लक्ष्य भाषा में भाषाशास्त्रीय दृष्टि से ही नहीं, सृजनात्मक दृष्टि से भी पारंगत होना चाहिए। वे साहित्य-सर्जन के लिए ही नहीं, बल्कि अनुवादक के लिए भी मूल्यवत्ता को अनिवार्य बताते है।

आज साहित्य के पठन-पाठन का संकट गंभीर है क्योंकि छपे हुए शब्द यानी किताबें खुद संकट में हैं। विष्णु जी छपे हुए शब्दों के निरंतर घट रहे महत्त्व को लेकर चिंतित थे। छपे हुए शब्द यानी किताब। विष्णु जी ने अपने एक आलेख 'किताबों की दुनिया' में कहा हैं कि ''हमने पुस्तक को अपनी सबके अंतिम आवश्यकता मान लिया है जबकि वह सबसे पहली आवश्यकता होनी चाहिए।''[14]

वस्तुतः तीव्र भौतिक विकास ने जीवन से पुस्तकों को निर्वासित-सा कर दिया है। शिक्षा का अभाव भी एक कारण है, लेकिन विष्णु जी इसे मनोवृत्ति का प्रश्न भी बताते हैं।

विष्णु प्रभाकर के दो महत्त्वपूर्ण निबंध ऐसे है जिसमें उन्होंने अपने खुद के सृजन-कर्म पर सीधी बात कही है। पहला, 'जो लिख न सका' एक छोटा-सा लेख है, जिसमें उन्होंने अपने सर्जक की खामियों और खूबियों को विश्लेषित किया है। वे कहते हैं कि मुझे निरंतर स्रष्टा होने का अहसास रहा है। अब तब मैंने जो कुछ लिखा है वह 'सहज' नहीं है, उसमें 'मैं' हूँ।

उनकी रचना में उनका 'मैं-भाव' कितनी दूर तक फैला-पसरा है, बड़ी ईमानदारी से विष्णु जी इसकी निर्मम पड़ताल करते हैं। वे अपनी रचना में 'अहम् के विस्फोट' को सहज ही स्वीकार करते हैं और उससे मुक्ति की कामना करते हैं। उन्हें आंतरिक पीड़ा है कि वे जीवन भर अपने 'मैं' और 'अहम्' से मुक्ति होकर कुछ नहीं रच पाए। सहजता की अनवरत तलाश में बहुत कुछ अनलिखा रह गया।

अपने सृजन-कर्म पर उनका दूसरा थोड़ा लंबा निबंध है, 'मैं' मेरा समय और रचना-प्रक्रिया। यहां उन्होंने अपने रचना-कर्म के संदर्भ में अपने समय की पहचान एक ऐसे समय के रूप में की है, जिसका स्वर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से एकातान था। इसलिए विष्णु जी अपने सृजन का मूल स्वर मनुष्यता का सम्मान और हर प्रकार के शोषण से मुक्ति को मानते हैं। सृजन का मूल स्वर मनुष्यता का सम्मान और हर प्रकार के शोषण से मुक्ति को मानते हैं। अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में उनका स्पष्ट मत है कि ''वाद से मैंने संवाद की ओर जाना चाहा है, विवाद की ओर नहीं।'' निश्चित रूप से रचना में संवाद का आग्रह उनकी रचना-प्रक्रिया को जटिल और संश्लिष्ट नहीं बनाता, बल्कि उसकी जगह एक सहज संप्रेषणीयता प्रवाहमान रहती है। शिल्प के स्तर पर यह उनके रचना-कर्म की दुर्बलता मानी जा सकती है, लेकिन रचना को संप्रेषणीय और संवादात्मक बनाने के लिए उन्हें कोई भी कीमत चुकानी पड़े, कम ही लगती हैं इसलिए शिल्प का नाम लेकर उनके ''शब्द मुखौटे नहीं लगते, अर्थ की तलाश में भी नहीं भटकते।'' वे कहते हैं''क्योंकि मेरा प्रयत्न अपनी

क्षमता के अनुसार अर्थ को शब्द देना रहा है, शब्द को अर्थ ढूँढ़ना न हीं। मेरे सृजन की शक्ति प्रतिभा नहीं, प्रीति है। सरलप्राणा प्रीति। ''ढाई आखर' की यही पवित्र पूंजी मेरा मूलधन है।''[15]

सचमुच विष्णु प्रभाकर जैसे कृती साहित्यकार का समूचा रचना-कर्म संपूर्ण मानवता के प्रति अगाध प्रेम की भावपूर्ण अभिव्यक्ति है। चाहे उनका कथा-साहित्य हो, उपन्यास हों, जीवनी, संस्मरण, एकांकी, आत्मकथा या बाल-साहित्य-सबमें मानवता के प्रति इससे अछूती नहीं है। बल्कि अपने निबंधों में प्रायः उन्होंने बहुत अनौपचारिक होकर अपने, दूसरे और सबके मन की बात को कहने-जानने-समझने की ईमानदार कोशिश की है। शायद इसलिए भी उनके निबंध विशिष्ट हैं। उनके निबंध-लोक की ओर सुधी-जनों का ध्यान किंचित कम ही गया है। उनकी जन्मशती के अवसर पर उनके निंबधों की दुनिया अपने अवलोकन का निमंत्रण हमें देती है।

संदर्भ-

1. दो शब्द, कलाकार का सत्य, विष्णु प्रभाकर, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करणः 1991
2. वही
3 वही
4 आलेख-कलाकार का सत्य, पृ. 23
5. कला की प्रामाणिकता, निर्मल वर्मा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 23
6 वही
7. आलेख-कलाकार का सत्य, पृ. 16
8. वही, पृ. 21-22
9. वही, पृ. 35
10. आलेख- शांति और सम्प्रीति, पृ. 44
11. आलेख- सृजन और अंकुश, पृ. 57
12. अलेख- साहित्यः मानवात्मा की बंधनहीन अभिव्यक्ति, पृ. 92
13. आलेख- आधुनिकताः सही स्वरूप, पृ. 99
14. आलेख- किताबों की दुनिया, पृ. 165
15. आलेख- मैं, मेरा समय और रचना-प्रक्रिया, पृ. 182

संपादन सहायक, अनुसंधान एवं भाषा विकास विभाग, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

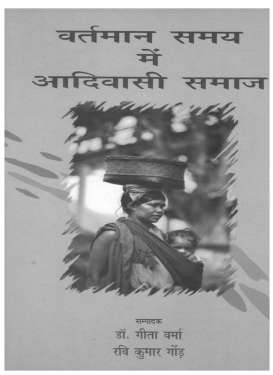

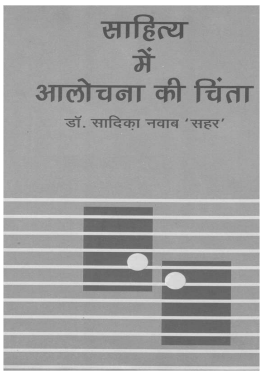

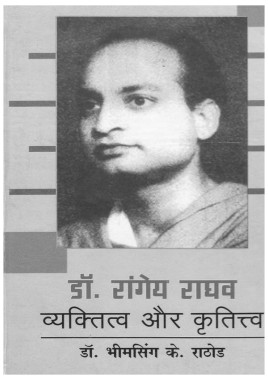

राजकमल चौधरी के काव्य में मानवीय संवेदना

डॉ. (श्रीमती) के. के. रवि

साहित्यकार को अपनी सभ्यता एवं संस्कृति से अगाध लगाव है। किसी भी समाज में ऐसे लोग गिने-चुने ही होते हैं जो अपनी चेतना को समाज के आत्मसंघर्ष का कुरूक्षेत्र बन जाने दें। ऐसे लेखक भी कम होते हैं जो शब्दों, स्मृतियों और संबंधों की पुनः परिभाषा की यातना स्वयं अपनी आत्मा में झेलते हैं और इस यातना की परिणति को ही नहीं, दुःखदायक प्रक्रिया को भी अपने शब्दों में आने देते हैं और उन शब्दों को पाठक तक परिभाषाओं के इस संघर्ष को विषाद से ही शुरू करते हैं, लेखक और नागरिक दोनों की भूमिकाओं में नैतिक कर्म की खोज करना राजकमल चौधरी के काव्य जगत की मूल प्रतिज्ञा है। कवि संवेदना और अनुभव की भाषा को एक गहरी पीड़ा के साथ खोजते हैं। रचनाकार समाज में नैतिक मूल्यों के अवमूल्यन से क्षुब्ध है। कवि का विचार है कि साहित्य आम आदमी की आवाज़ बने जो संसार संग्राम से जूझ रहा है, हक के लिए लड़ रहा है। रचनाकार के अनुसार जीवन-धुरी जीवन का बृहद् लक्ष्य है। यह बृहद् लक्ष्य मानव की केन्द्रीय प्रक्रियाओं का अविभागीय अंग बनकर जीना है। साहित्यकार इसी जीवन बोध को बिजली भरी तड़पदार ज़िन्दगी कहते हैं, यह ज़िन्दगी मेहनत और मुक्ति के काम में लगे सर्वहारा समाज की शानदार ज़िन्दगी है, रचनाकार को समाज के शोषित, उपोक्षित और अर्थाभाव झेल रहे लोगों के प्रति गहरी करूणा, प्यार, उम्मीद और संवेदना है। रचनाकार का जीवन संघर्ष जनता के उस अभिन्न मित्र का संघर्ष है, जो सच्ची मैत्री की अग्नि-परीक्षाओं में तड़प रहा है और जनता के शत्रुओं की खतरनाक प्रणालियों का एक जवाबी मोर्चा है। रचनाकार ने एक विचारक की भांति अपनी रचनाओं में मानवतावादी समाजवादी और जनवादी मूल्यों के प्रति संवेदना व्यक्त की है।

आज के भौतिकवादी युग में सभी लोग धन के पीछे भागे जा रहे हैं उन्हें न तो अपने धर्म की परवाह है और न ही वह अपने धर्म के प्रति वचनबद्ध हैं। अपने पूर्वजों दाय जो कि हमें पितर सरीखे प्राप्त हुई है अर्थात् समाज में पूर्वजों द्वारा स्थापित नैतिकता एवं पारलौकिक आस्था आज के वैज्ञानिक युग में हंसी-मज़ाक लग रहा है क्योंकि आज की भौतिक चका- चौंध ऐशों-आराम में वह इतना अंधा हो गया कि अपने सुख-सुविधाओं की पूर्ति में ही लगा रहता है। पहले कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं था अपनी वचनबद्धता के लिए वह अपने प्राण भी न्यौछावर कर देता था, लेकिन आज के दौर में यह सब खिलवाड़ बनकर रह गया है। कवि आज के समाज की इसी मनोवृत्ति पर ऑडिट करते हुए कहते हैं-हर कुछ हंसी-मज़ाक। हर कुछ काली सच्चाई।/दोनों पहलुओं पर तेज चलते हैं खरे और खोटे सिक्के।/बुद्धि पर पर्त्त की पर्त्त वंचना। चेहरे पर मक्खनी नर माई।/वह समय बीत गया, जब एक केबल कोई एक बात होती थी।/हम फ़ारस की शहजादी से ब्याह करते थे, पर लेते थे /आधा राज-पाट। हम शर्त हार जाते थे, काट देते थे/अजगरी तहखाने में उम्र भर लंबी आखिरी रात।[1]

वेश्यावृत्ति बेसहारा औरतों के संबंध में कवि अपनी संवेदना व्यक्त करते हुए कहते हैं कि

यह औरतों की मजबूरी और लाचारी है। वे अपने परिवार, अपने बच्चों के पालन-पोषण हेतु अपनी अस्मिता को सड़कों और गलियों में बेचने के लिए ग्राहकों का इंतज़ार करती रहती है। अपने समाज की इसी सच्चाई को उजागर तथा ऑडिट करते हुए कवि कहते हैं-"सड़के खाली हैं। वे करती हैं इंतजार-/सड़कें, गलियां, बरामदे भर गये हैं, फिर भी,/वे करती रहती हैं इंतज़ार।/आवाज़ पहचानती हैं। दर्द, दहशत, बीमारियां और/हविस उसको-वे जानती हैं।/सिर्फ नहीं उसका नाम...../उसका कोई नाम नहीं है, शायद।"[2]

कवि आज के समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और रिश्वत की परम्परा को समाज के लिए अभिशाप मानते हैं। सरकार सब कुछ जानते हुए भी इस अपराध पर कोई कारगर कदम नहीं उठा रही है और आज भ्रष्टाचार ने ही शिष्टाचार का रूप ले लिया है। बिना रिश्वत किसी भी कार्यालय में कोई काम होने वाला नहीं है। कवि समाज के संबंध में अपने भाव अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं-"लाइसेंस चाहने वाले व्यापारी, समाज सेविका/और गैर सरकारी लेखक और कवि/धन्यवाद पाये बगैर खुश नहीं हैं आजकल/आजकल कोई खुश नहीं होता है शोक सभाओं से/विरोधी प्रस्तावों से अपने पेट की योजनाएं और/सब्जियों के पौधे उगाने में व्यस्त हैं"[3]

कवि का विचार है कि आज देश में नीचे से ऊपर तक हर व्यक्ति कहीं न कहीं अपने स्वार्थ के लिए एक दूसरे से बंधा हुआ है। हमारे हर काम में अपना व्यक्तिगत स्वार्थ छिपा होता है। आज चाहे सत्ता हो या समाज सभी एक दूसरे के दास हैं और सभी देश के हर क्षेत्र में स्वार्थ, छल और भय के द्वारा अपना उल्लू सीधा करने में प्रयासरत हैं। सभी समस्या का ताला सत्ता रूपी चाबी से खुलता है। ऑडिटर के रूप में कवि अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं-सत्ता की जयमाला का दास हूँ, मैं, जो लोकतन्त्र के गले में मढ़ी है/दास हूँ- दास, इंकलाबी साथियों। तुम्हारे साथ मैं दास हूँ-/सत्ता और समाज के बीच घोषित- अघोषित शर्तनामों का दास/क्योंकि निरन्तर सक्रिय हैं, शर्तें-स्वामी पक्ष से-/सांस लेने और सांस लेने-देने की। रोटी खाने और खिलाने की,/अंग ढंकने और अंग उघारने की। सिर छुपाने और सिर बचाने की,/आज़ाद रहने और गुलाम रखने की,/उपवास या अनशन में मरने की या देश भर को काट-बांट- खाकर ज़िंदा रहने की।[4]

देश व राष्ट्र के प्रति मानवीय संवेदना व्यक्त करत हुए कवि कहते हैं कि - आज के इस दौर में राजनेताओं में देश व राष्ट्र अथवा अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीनता है। वैभव विलासिता के भवर में पड़कर अपने देश व समाज को बेच देने में यह सक्रिय है क्योंकि इन राजनेताओं को अपनी रोटी, शराब, सिगरेट, पतलून और ऐशों-आराममय साधन हेतु गैर कानूनी कार्य करने में भी नहीं हिचकते हैं। राजनेता की मनोवृत्ति को ऑडिट के दृष्टिकोण को कवि ने अभिव्यक्त किया है।

गरीब मजदूरों के कर्तव्यनिष्ठता के प्रति संवेदना- साहित्यकार अपने तरीके से जीवन जीते हुए सामाजिक संघर्ष करना चाहता है। यह कविता उस समय की है जब अमेरिका में पूंजीवाद के व्याप्त भयावह परिणाम दृष्टिगोचर होने लगे थे। अमेरिका की पूँजीपरस्त रीतियों के कारण वहाँ की खोखली आर्थिक स्थिति के प्रति कवि आमजनता को आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि वे दिन दूर नहीं है जब अमेरिका के गरीब और मजदूरों को उनके परिश्रम का पूरा-पूरा पारिश्रमिक मिलेगा और ऐसी व्यवस्था के लिए कवित्व सर्वहारा वर्ग को बलिदान की वेदी पर चढ़ाने के लिए तत्पर कर लिये हैं ऐसे साहसी लोगों के साथ रहने के लिए कवि हमेशा तत्पर हैं-मैं देखता हूँ-/अमेरिका के दरवाजे बन्द होने लगे हैं/अंधेरा छाने लगा शोर मचने लगा/गीतों के बोल हथकड़ियों में खोने लगे हैं-/अमन को पुजारी रक्त की नदियों में सोने लगे हैं-/द्वीप की अंतिम लौ की तरह/भभक उठा है आज पूंजीवाद/जल रहे हैं ज़िन्दगी के, सच्चाई के तराने-/जल रहे हैं अमन आशियाने/हो रही है

एटमी छाया में इंसानियत बरबार/फूट रहा है युगों-युगों की कोढ़ का मवाद[5]

लेखक कहता है कि जो अमेरिका की रोशनी से रोशनीवान है वह अब सायों में भटक रहा है और दूसरों के बरबाद करने की साजिश रचने वाले देश स्वयं ही खूनी साम्राज्यवाद की फांसी पर लटक रहा है। अब वह उसका साथ चाहते हुए भी नहीं छोड़ सकता और वह ज़िन्दगी और मौत के बीच अपने को लटके हुए महसूस कर रहा हैं।

रोटी, कपड़ा, मकान मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएं हैं और वह इन सब की प्राप्ति के लिए उसे कठिन से कठिन परिश्रम करना पड़ता है जब वह नैतिक से सफल नहीं होता तो अनैतिक मार्ग चलने के लिए बाध्य हो जाता है। भूख एक मौलिक आवश्यकता है जिसके समक्ष फौलादी बाँधाएं अथवा अड़चने भी उसके इरादों के आगे झुक जाती हैं और मनुष्य अपने कठोर परिश्रम से सफलता की मंज़िल पा लेता है। इसी संबंध में कवि अपने विचारों को व्यक्त करता है-मौत से भयानक फौलादी सलाखें/जिसमें फंसी हुई है/मुरदा किसी चिड़िया की रंगीन पंखें/पत्थरों का रक्त पीते हुए/किसी पिशाच के स्याह-स्याह हुए/और भूख जर्जर /किसी गरीब विधवा की जलती हुई आंत।[6]

कवि के अन्दर जीने की एक ललक है वह कर्म प्रधान इस देश में जीना चाहता है और कुछ कार्यों को सम्पन्न करना चाहता है। अतः वह इस जीवन की क्षण भंगुरता युक्त संसार में जीवित रहने की इच्छा के प्रति अपना मत व्यक्त करते है। वह कहते हैं ग्लानियुक्त जीवन तथा असहाय समझकर दया किये जाने की ग्लानि की पीड़ा से मैं जल रहा हूँ। जो लोग बिना किसी अपराध के मासूम बकरियों की तरह काट दिये जाते हैं उनके अपराध बोध से मैं दबा जा रहा हूँ। एक तरफ कवि वैवाहिक जीवन के दौरान किसी अन्य महिला या प्रेमिका से संबंध को जहाँ एक तरफ नैतिक बुराई मानते है वहीं दूसरी तरफ वह इसे पारिवारिक कष्ट का कारण भी मानते हैं। कवि का विचार है कि जब अपनी गृहस्थी बसा चुके हो तो तुम्हें अपनी प्रेमिकाओं एवं पड़ोसिनों से किसी भी प्रकार का संबंध नहीं बनाना चाहिए। यदि ऐसा किया तो घर की शांति भंग हो सकती है परिवार में तिरस्कार का सामना करना पड़ सकता है। वहीं समाज की दृष्टि में अपमानित भी होना पड़ सकता है। वैवाहिक जीवन में दाम्पत्य संबंधों के प्रति अपने दायित्वों को समझते हुए कहते हैं-अपनी प्रेमिका के साथ फ़िल्म शो/मत जाओः कठिन होगा सह लेना/फैला हुआ निर्जन एकांत, जब पर्दे की तस्वीरों के प्रतिबिम्ब तैरते हो/चारों ओर। उधार मत दो पड़ोसी/घर की नई मालकिन को अपनी/क्रॉकरीः उसका दिल टूट जायेगा,/या तुम्हारे घर की शांति, और टूटने के बाद/चीज़ें वापस नहीं की जाती है।[7]

गरीबों की चीख और कराह के प्रति संवेदना- कवि का विचार है कि सत्ता और समाज के सत्ताधारी, कानून के रखवाले अपने उत्तरदायित्व से बचने के लिए घटित घटनाओं को दबाने का प्रयास करते हैं। कवि की कुछ पंक्तियां गरीबों की चीख और कराह से संबंधित हैं-शायद यह आखिरी चीख है, जो/इस सुरंग से निकली है। आखिरी/जमीन के नीचे मकान और सड़कें/बनाने वाले मजदूर मर चुके हैं।[8]

नगर बंधुओं के प्रति संवेदना - समाज में मानव अपनी जठराग्नि शान्त करने तथा परिवार की ज़रूरत की पूर्ति हेतु स्वयं को प्रतिदिन नीलाम करने वाली नगर बंधुओं के प्रति अपनी संवेदना को अभिव्यक्त करते हुए कवि कहते हैं-सड़कें खाली हैं। वे करती हैं इंतज़ार...../सड़कें गलियां, बरामदे भर गये हैं, फिर भी,/वे करती रहती हैं इंतज़ार।[9]

वेश्याओं के प्रति संवेदना - कवि की कविताओं में एक अर्थहीन विषाद के दर्शन होते हैं जिनका सार्वजनिक जीवन में कोई अर्थ नहीं है। इसी से संबंधित रचनाकार अपने विचार व्यक्त करते हुए

कहते हैं कि-बीते हुए दिनों की स्मृतियां वेश्याएं हैं/नहीं याद हैं मुझे जिनके नाम/या जिनमें नगरों और गलियों के नाम...../मुझे याद है केवल उनके चेहरे, चेहरे पर दो आँखें/आँखों में हर जगह एक अर्थहीन विषाद।/विषाद के अतिरिक्त नहीं है स्मृतियों में तिक्त मधुर स्वाद/केवल जिह्वा पर जैसे सर्प-दंशन है/केवल स्वप्न में सुना गया है किसी जर्जर वेश्या का क्रंदन।[10]

लोकतन्त्र के नाम पर देश में भ्रष्टाचार के आगे आम जनता स्वयं को निरीह एवं ठगी सी महसूस करती है देश प्रेम की भावना : कवि को अपने देश से बहुत प्यार है। देश में व्याप्त भ्रष्टाचार पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं-अपनी रोटी, शराब, सिगरेट, पतलून, हंसी और/कठोरी और कलम के लिए/तो तुम भी उसी शर्तनामे की सत्ता, व्यवस्था,/गुंजाइश छोटी-बड़ी सुविधा के दास हो।[11]

मानवता के प्रति संवेदना- कवि पूंजीवाद देश अमेरिका और उसकी एटमी शक्ति पर व्यंग्य करते हैं कि अमेरिका एक पूंजीवाद देश है और अपने स्वार्थ के सहायता के नाम पर दूसरे देशों को प्रभावित करता है। कवि के विचार से आम आदमी का जीवन दुःखों का पर्याय है तथा दुःखों से भरा है। व्याधि, गरीबी, क्षुधा, बेरोजगारी, अपमान तथा उपेक्षा एवं विवशताएं उनके जीवन का एक अंग बन गयी, एक हिस्सा बन गयी है। जबकि यही समुदाय इस समस्त विकास और प्रगति का हिस्सा वास्तविक मूलाधार है तथा स्थायी स्तम्भ है। इसी वर्ग के बैल रूपी कंधों पर अमीरों अर्थात् उच्च समाज की सुख-सुविधाओं और महत्त्वाकांक्षाओं के प्रसाद की नींव स्थिर रहती है। महल बनाने वाले सड़कों पर सोते हैं। आज की सदी में भी गरीब, बेसहारा एक नरकीय ज़िन्दगी जीने के लिए मजबूर हैं। बिहार के प्राकृतिक आपदा का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं-जब पूरा का पूरा यह शहर मुजफ्फरपुर/खारे पानी में डूब/औरत वह बेमिसाल/मीराजी की ग़ज़ल में शीशे के बिखरे हुए-/टुकड़ों पर टूटती-बिखरती रह गई/बेनहाई हुई, बगैर संवारे बाल...../उसके चेहरे पर मुस्कुराहट नहीं,/हरे, पीले, नीले, सफेद सांप रेंगते है,/उसके होंठों में शब्द नहीं शब्द नहीं/मुड़े हुए घुटनों के ऊपर अंधेरी झाड़ियों में/सिर्फ एक अक्षर कुछ नहीं होता है अकाल.... केवल यही....कि.../पूरा का पूरा यह शहर खारे पानी में डूब जाता है।[12]

कवि प्रसव पीड़ा से पीड़ित गरीब और अर्धविक्षिप्त नारी की स्थिति के बारे में लिखते हैं कि जब किसी धनवान एवं मध्यवर्गीन परिवार में कोई नारी नवागत शिशु को जन्म देती है तो उसके स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए दूध, मेवे एवं अन्य स्वास्थ्यवर्धक वस्तुओं के खाने पीने तथा प्रसव से पीड़ित शरीर की सफाई एवं मालिश की अच्छी एवं कुछ न कुछ व्यवस्था घर व परिवार के लोगों द्वारा कर दी जाती है, लेकिन जब गरीब और अर्धविक्षिप्त नारी शिशु को जन्म देती है तो उसकी स्थिति अत्यन्त कारूणिक एवं दयनीय हो जाती है। इन पर कोई मानवीय संवेदना दृष्टिगत नहीं होती है। स्वतन्त्र भारत देश में आज भी लड़की को बोझ समझा जाता है। उसका उत्पीड़न किया जाता है। कभी दहेज के नाम पर कभी चरित्र-हीनता के नाम पर, कभी सौतेली माँ के सताने के नाम पर, कभी बहू उत्पीड़न के रूप में, कभी नौकरियों में अपने कार्यालय सहयोगियों के द्वारा नारी समुदाय प्रतिदिन, प्रतिक्षण प्रताड़ित हो रही हैं। इनकी दुर्दशा देखकर कवि का विचार है-आंसू भर आंचर में/बाट, घाट, पांतर में,/मूंद नयन, बेसुध बन, श्लथ चरण/बरस गई बिखर गयी[13]

इस वैज्ञानिक युग में जब परिवार के मुखिया की असमय मृत्यु हो जाती है तो परिवार के भरण-पोषण के लिए विवश नव युवतियों को न चाहते हुए भी परिवार की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कहीं न कहीं काम करना ही पड़ता है। कवि ने अपने काव्य में एक विधवा को किन-किन समस्याओं का सामना करना होता है? नारियों की विवशताओं एवं बेबसी पर कवि की अभिव्यक्ति इस प्रकार है-वर्तमान की सड़ांध-भरी नालियों से कोई वास्ता नहीं/कोई रास्ता नहीं सच के बंद दरवाजों से बाहर निकल आने का/अन्दर ही अन्दर फटती हुई नीली नसों का बेतरतीब

जाल/बुन दिया गया इस शहर में और उस शहर में/और सब कुछ है केवल नहीं है- वर्तमान[13]

विधवा औरतें जब अपने बच्चों की भूख मिटाने में असफल रहती हैं तो वह मजबूर होकर आत्महत्या कर लेती है। इस दृष्टि से कवि की मानवीय संवेदना इस प्रकार अभिव्यक्त है-एक दूधमुहे बच्चे के झूले की रस्सियां/आत्महत्या के फैसले के बाद फंदे बन कर छत से झूल रही है,/चावल-गेहूं के हड़ताली जुलूस ने/दबावों और प्रार्थनाओं की सारी दुकाने बंद कर दी है[14]

कहने को तो अपने देश में स्वराज आ गया है, लेकिन वर्तमान समय में हमारे देश की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक दशा में बहुत अधिक वैषमयता है। औरतों के त्याग और बलिदान के प्रति दुनिया की उदासीनता पर कवि कहते हैं कि-परबतिया माँ की अंगुली पकड़े चढ़ता परवान,/दुनिया का करता पहचान।/माँ तो दासी, प्रभुचरनन की दासी/मत पूछ-कौन प्रभु?- पति या परमेश्वर?/दोनों के बीच ग्रह-'स्वामी या मुखिया'/या पुरोहित, लठैत, जमींदार/या फिर चौकीदार से जुड़े राष्ट्रपति तक सारे अफसरशाह/या जल्लाद से जुड़े सर्वोच्च न्यायधीश तक-दलाल, थैलीशाह।[16]

निष्कर्षतः कवि राजकमल चौधरी का काव्य मानवीय संवेदनाओं का पुज है। मानव जीवन का यथार्थ, उसकी समस्याएं मानवीय संवेदना पर आधारित है। कवि के काव्य का अधिकांश भाग मानववाद और जन्म उद्‌बोधन से जुड़ा है। उनके काव्य में अधिकांश रूप से जीवनानुभव और उनसे उद्‌भूत संवेदनाओं के दर्शन होते हैं।

भोगे हुए स्वानुभूत सत्य की अभिव्यक्ति तो उन्हीं रचनाओं में हो सकती है जब स्वयं रचनाकार ने भोगा हो और लिखा हो। राजकमल चौधरी एक ऐसे ही रचनाकार है जिन्होंने समाज में व्याप्त सभी समस्याओं का सामना बड़ी बेरहमी से किया तथा लेखक स्वयं समस्याओं से घिरा है और आशा करते हैं कि व्यवस्था में अवश्य परिवर्तन होगा।

राजकमल चौधरी के काव्य में नगरबोध के तनाव और विचार का चित्रण है। कवि अपने परिवेश और युग की सीमा में आधुनिकता को स्वीकार भी और अस्वीकार भी किया है। राजकमल की खोज नगरबोध को जीने और छुटकारा पाने की है।

संदर्भ-

1. (सं.) देवशंकर नवीन, आडिट रिपोर्ट, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली, वर्ष 2006, पृ. 243
2. वही, पृ. 193
3. वही, पृ. 120
4. वही, पृ. 99
5. वही
6. वही, पृ. 47
7. वही, पृ. 249
8. वही, पृ. 249
9. वही, पृ. 193
10. सुभाष चन्द्र यादव, राजकमल चौधरी का सफर, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष 2001, पृ. 70
11. वही, पृ. 199
12. (सं.) देवी शंकर नवीन, आडिट रिपोर्ट, राजकमल चौधरी, पृ. 25
13. (सं.) देवी शंकर नवीन, ऑडिट रिपोर्ट, राजकमल चौधरी, अकाल बेला की कविता, बरसात, रात, प्रभात, पृ. 147
14. (सं.) देवी शंकर नवीन, आडिट रिपोर्ट, राजकमल चौधरी में संकलित अकाल के बेला की कविता 'निद्रा-स्थिति', पृ. 120
15. वही, पृ. 119
16. वही', पृ. 102-103
17. वही, पृ. 36-37

एसो.प्रो. हिन्दी विभाग, कला संकाय, डी.ई.आई. (डीम्ड विश्वविद्यालय), दयालबाग, आगरा

नागार्जुन के काव्यों की प्रमुख विशेषताएँ

कनुभाई करशनभाई भवा

हिन्दी काव्य साहित्य में प्रगतिवाद के शीर्षस्थ कवियों में कवि नागार्जुन का नाम अग्रणी रूप में लिया जाता है। प्रगतिवाद की चर्चा नागार्जुन के बिना अधूरी रह जाती है। प्रगतिवाद के बहुचर्चित एवं बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाकार कवि नागार्जुन है। उनका काव्य सृजन कार्य छायावाद से लेकर बीसवीं सदी के अंत तक चलता रहा। उनका लेखन हर समय और युग में चर्चित रहा है। नागार्जुन की रचनाओं में युग जीवन का यथार्थ चित्रण पाया जाता है। जिसमें सामाजिक कुरीतियों तथा आर्थिक शोषण की नीतियों पर गहरा व्यंग्य किया है। कवि के काव्य विषय कल्पना की ऊँची उड़ान नहीं भरते, किन्तु अपने चारों ओर के वातावरण को ही विषय के रूप में ग्रहण करते है। प्रगतिवादी विचारधारा के साहित्यकारों में उनकी काव्य साधना, स्पष्टवादिता, व्यंग्यात्मकता, जनवादिता, भुक्तभोगीपन, राजनैतिकता, स्वानुभूति, मानवतावादी स्वर, लोकजीवन दर्शन, प्रकृति चित्रण तथा सहजता के कारण अलग और अनोखा स्थान रखती है। अर्वाचीन समय में कवि निराला जनवादी साहित्य के जनक के रूप में सामने आते है, लेकिन उनके पश्चात् सशक्त एवं ताकतवर जनवादी साहित्यकार प्रचार एवं प्रसार करने वाले कवि के रूप में नागार्जुन का नाम ही उल्लेखनीय है। नागार्जुन का साहित्य एवं कविता स्वानुभूत भुक्तभोगी होने से हर पाठक को अपनी कविता लगती है । उनके काव्य में हमेशा नये विषय, जनजागरण के भाव एवं स्वर की चर्चा होती रही है। इनकी कविता में जनवादी स्वर एवं व्यंग्य एक अस्त्र के रूप में उभरकर आते है। नागार्जुन का व्यक्तित्व तथा कृतित्त्व जैसे बहुमुखी है वैसे उनकी कविता की भाषा भी बहुरंगी है। उनकी काव्य भाषा सहज, सरल, सीधी-सादी, प्रवाहमयी, सपाट बयानी, चुटीली तथा लोकभाषा से युक्त भाषा है। इस प्रकार नागार्जुन हिन्दी प्रगतिवादी काव्य के सशक्त हस्ताक्षर है।

नागार्जुन का जीवन एवं व्यक्तित्व ग्राम संस्कृति एवं ग्राम चेतना से पूर्ण विकसित हुआ था। उनके जीवन में आई विविध घटनाएँ प्रसंग, अनुभव व वातावरण तथा स्थितियों के अनुरूप व्यक्तित्व निर्माण हुआ था। इसी कारण पूंजीवादी एवं साम्राज्यवादी शोषण, अभावग्रस्तता आदि के प्रति उनका मन विद्रोही बन गया था। नागार्जुन का व्यक्तित्व संघर्षशील, संघर्षरत, एकांत प्रिय, मिलनसार, सीधा-सादा, यायावर एवं मस्तमौला स्वभाव वाला था। खुशामद व चापलूसी पसंद नहीं थी। दलित, शोषित, पीड़ित, अत्याचार व अन्यायग्रस्त व्यक्ति तथा समाज के प्रति उनके मन में करुणा तथा मानवता का भाव जागृत हो उठता था। वे चिंतन मनन कर साहित्य सर्जन करते थे। नागार्जुन का व्यवसाय खास कुछ नहीं था।कृषि पर अपनी आजीविका चलाते थे। स्वयं गाकर कविता बेचते थे। पुस्तकों के प्रकाशन के बाद मिलने वाली रायल्टी से वे अपने परिवार की आजीविका चलाते थे। इस प्रकार वे अपने परिवार का निर्वाह करते थे। नागार्जुन ने रामविलास शर्मा को लिखे हुए पत्र से बात स्पष्ट होती है - नागार्जुन - साहित्य प्रचार-प्रसार करने का ठेका ले लिया है, बुकसेलरी कर रहा हूँ, बिहार के सत्रह जिले पता है न। एक-एक करके सभी जिलों की धूल छानने का संकल्प

किया।[1] भारत में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलन का भी प्रभाव उन पर रहा है। जिसका चित्रण कविता में करते है। रूस की क्रान्ति के प्रभाव स्वरूप मार्क्सवादी विचारों की ओर झुकते है। राहुल सांकृत्यायन, रामवृक्ष बेनीपुरी, जैन मुनि रत्नचंद्रजी, स्वामी सहजानंद, सुभाषचंद्र बोस, पंडित बलदेव मिश्र, दरभंगा की महारानी लक्ष्मीवती देवी, पंडित अनिरुद्ध मिश्र, पंडित सीताराम झा, पंडित मदनमोहन मालवीय, पंडित गंगाप्रसाद उपाध्याय, महाकवि कालिदास, कविन्द्र रविन्द्रनाथ टैगोर, गोर्की, लू शुन, कवि केदारनाथ अग्रवाल, महात्मा गाँधी प्रकृति, राजनीति तथा सामाजिक स्थितियों से प्रेरणा प्राप्त करके काव्य लेखन करते रहें।

नागार्जुन हिन्दी साहित्य में सन् 1935 से लिखना शुरू करते है। उनकी पहली हिन्दी कविता राम के प्रति साप्ताहिक विश्वबंधु में सन् 1935 में छपी थी। इसके बाद निरंतर काव्य साधना करते रहे और आजकल कुल मिलाकर नागार्जुन के चौदह काव्य संकलन और दो खंडकाव्य प्रकाशित मिलते है। कथा साहित्य के अन्तर्गत तेरह उपन्यास, कहानियाँ, बुकलेट्स तथा पुस्तिकाएँ, स्फूट साहित्य, एक नाटक, परिचयात्मक लेख, यात्रा वर्णन, चार निबंध संकलन, पत्र, भाषण, साक्षात्कार, संस्मरण जीवनी आदि विधाओं में नागार्जुन ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। संस्कृत साहित्य में तीन काव्य और मैथिली में उपन्यास तथा काव्य जैसी विधाओं को अपनी लेखनी से स्पर्श किया है। वे मैथिली में साहित्य लेखन करते थे तब वे यात्री नाम से लिखा करते थे। वे पत्र-पत्रिकाओं के लिए लिखते थे तब भी यात्री नाम से लेखन करते थे। इससे पूर्व वैधनाथ मिश्र वैदेही नाम से लेखन करते थे । रामवृक्ष बेनीपुरी के मार्गदर्शन के बाद नागार्जुन नाम से लिखते रहे। वे बहुज्ञ भाषाविद् थे। संस्कृत, पाली, अपभ्रंश, प्राकृत, मैथिली, बिहारी, बंगला, अंग्रेज़ी व हिन्दी जैसी अनेक भाषा का ज्ञान था। यह उनके घुमक्कड़ स्वाभाव और अध्ययन का परिणाम था। नागार्जुन बहुमुखी प्रतिभा के धनी होने से उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं में अपनी कलम चलायी है, लेकिन काव्य विधा से जितनी ख्याति मिली उतनी अन्य किसी विधा से नहीं मिल पायी। साहित्य लेखन को ही अपना धर्म मानकर साहित्य सृजन करते रहे थे।

नागार्जुन की कविता उन्मुक्त एवं प्रफुल्लित है। इनकी कविता समष्टि की कविता है। काव्य में मानवीय भावों को जोड़कर सृजन करते है। जनता की भावनाओं को नागार्जुन चित्रित करते है इसलिए जनवादी काव्य बन पड़ा है। जनवादी साहित्य जनता के भावों, विचारों, सुख-दुःख और समस्याओं को चित्रित करता है। यह साहित्य आम आदमी समझ सकता है। यह साहित्य शोषित व पीड़ित लोगों का पक्षधर है। जनवादी साहित्य के संदर्भ में डॉ. शिवकुमार मिश्र का कथन है -तमाम साहित्य जो आज भले ही बहुसंख्यक जनता की समझ के दायरे में नहीं है, किन्तु जो शोषण और अनाचार पर टिकी सत्ता की खिलाफत करता हुआ, शोषित मनुष्य का पक्षधर है। जनवादी साहित्य भले ही न कहा जाए, जनता का साहित्य ज़रूर है और हमारा समर्थन भी उसे है।[2] नागार्जुन के काव्यों में विश्वास एवं उत्कट जिजीविषा का चित्रण किया गया है। संघर्षशील तथा पीड़ा से ग्रसित आम आदमी नागार्जुन के काव्य का केन्द्र है। वह व्यक्ति हताश-निराश नहीं है, बल्कि समस्याओं का सामना करने की ताकत रखता है। जीवन जीने की एक अदम्य जिजीविषा उसके मन के भीतर पाई जाती है। यह आदमी सहनशील एवं शक्ति संपन्न है। मानव की मूल्य शक्ति श्रम है। श्रमिकों की शक्ति संघठित होने पर उसके सामने कोई शक्ति अपना प्रभाव नहीं डाल सकेंगी। नागार्जुन आशावादी तथा परिश्रम पर पूर्ण विश्वास रखते है। उनके प्रति कवि आस्थावादी है। जनता की शक्ति पर विश्वास व्यक्त करने वाली कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत है - तन जर्जर है भूख प्यास से/व्यक्ति-व्यक्ति दुःख-दैन्य ग्रस्त है/दुविधा में समुदाय पस्त है/लो मशाल अब घर-घर को आलोकित कर दो/सेतु बनो प्रज्ञा-प्रलय के मध्य/शांति को सर्व मंगला हो जाने दो।[3]

कवि नागार्जुन के काव्यों में भारतीय लोकजीवन और लोक संस्कृति के दर्शन होते है। ग्राम जीवन और ग्राम प्रकृति के साथ जुड़कर कवि लिखता है। इससे कवि अनुभूति को यथार्थ वाणी प्रदान करते है तथा जीने की उर्जा प्रदान करते है-बहुत दिनों के बाद/अब की मैं जी भर सुन पाया/धान कुटती किशोरियाँ की कोकिल कंठी तान[4]

कवि के काव्यों में जनानुभूति का स्वर सुनाई देता है। संघर्षरत जीवन शोषितों को शोषण से मुक्ति, इनकी समस्याएँ व दयनीय अवस्था का चित्रण नागार्जुन की कविता में पाया जाता है। उनकी कविता प्रतिहिंसा का समर्थन करने वाली कविता है। कवि ने प्रतिहिंसा नामक कविता में इसका प्रमाण दिया है। जन-सामान्य तथा जन जीवन की विसंगतियों का चित्रण कवि करता है-नीचे निपट गरीबी, ऊपर थाट-बाँट की रजत जयंती/शर्म न आती, मना रहे वे, महंगाई की रजत जयंती।[5]

नारी की दयनीय शोषित, पीड़ित अवस्था का चित्रण करके कवि नारी को भोग एवं गुलामी की वस्तु नहीं मानते बल्कि नारी को समाज में गरिमा व गौरव प्रदान करते है। नारी की गुलामी के लिए सवाल उठाकर कहते है कि कब तक गुलाम रहेंगी? जैसे सवाल भी उठाते है। तालाब की मछलियाँ नामक कविता नारी को गुलामी से मुक्ति दिलाने की बात करती है। नारी शोषण के विरुद्ध अपनी आवाज़ को बुलंद करते है -हाय पाकर भी मानव देह/तुम्हारा यह बदतर हाल/तनिक भी ची-चूं किया भी कि/नहीं खींच लेते है ज़िंदा खाल।[6]

नागार्जुन ने जनता के अभावों, समस्याओं एवं शोषण की अभिव्यक्ति अपनी कविता के माध्यम से की है। यह सब करते समय कवि कहीं पर प्रेम से घृणा करते है ऐसा नहीं है। उन्होंने प्रेम का चित्रण भी किया है, लेकिन उसके काव्य में आने वाला प्रेम का चित्रण यह गौण स्थान रखता है। उनकी कविता में आने वाला प्रेम का चित्रण मेहनतकश लोगों में श्रम की महत्ता बढ़ाने के लिए आता है या फिर शोषित, पीड़ित लोगों में जीने की प्रेरणा जगाने हेतु आता है। संघर्षमय जीवन की प्रेरणा के रूप में प्रेम का चित्रण आता है - संध्या की तिगुनी धुंध में/ओझल होती जाति किरणें/हिममंडित शिखरों को/सत्वर रहीं चूम..../भारी-भारी बोरियाँ लदी हैं पीठों पर/पर्वत कन्याएँ गयी घूम।[7]

नागार्जुन की कविता में उत्सवधर्मिता है। उत्सवधर्मिता उनकी कविता का अंग बन चुका है। उनकी कविता में आम आदमी के जीवन की त्रासदी तथा दर्द दिखाई देता है, लेकिन उनका काव्य प्रसन्न एवं प्रफुल्लित करने वाला है। कविता का नायक हमेशा आम आदमी तथा सर्वहारा वर्ग का मनुष्य रहा है। कवि स्वयं प्रसन्नचित व्यक्ति होने से उनके काव्य में अलगाव देखने को नहीं मिलता। इसीलिए वे समाज के साथ जुड़ते है और समाज में व्याप्त मानव जीवन के अनुभवों को अपनी कविता में अभिव्यक्त करते है।

कवि नागार्जुन निडर एवं निर्भीक व्यक्तित्व के धनी है। देश और समाज में जो देखा, अनुभव किया तथा भोगा है। उसका चित्रण वे कविता में करते है। कवि निडर एवं निर्भीक होकर सहज रूप से अपनी बात रखकर वस्तु स्थिति का यथार्थ परक चित्रण करते है -स्वेत-श्याम-रतनार अँखियों निहार के/सिंडिकेटी प्रभुओं की पगधूर झार के/लौटे हैं दिल्ली से कुल टिकट मार के/खिले हैं दाँत ज्यों दाने अनार के/आये दिन बहार के।[8]

कवि की कविताओं में देशभक्ति एवं राष्ट्र प्रेम लबा-लब भरा दिखाई देता है। नागार्जुन आम आदमी, शोषित, पीड़ित, उपेक्षित लोगों के पक्षधर कवि है। उस व्यक्ति के प्रति मन में प्रेम, विश्वास व आस्था है। वह देश विद्रोही तथा विरोधी घटनाओं को धिक्कारते है। तालाब की मछलियाँ नामक संग्रह की कविता में कवि मानते है कि महात्मा गाँधी की हत्या होना न केवल देश के लिए, बल्कि पूरी दुनिया के लिए हानिकारक है। देश को सुजलाम-सुफलाम बनाने की बात कवि नागार्जुन अपनी

कविता में करते है -अन्न-वस्त्रदा/सुखदा, सुभदा/प्राणों से भी बढ़कर प्यारी/हिम किरीटिनी/जलधि-पैजनी/बने स्वर्ग यह भूमि हमारी।[9]

कवि की कविता में विषमता का चित्रण पाया जाता है। कवि सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक विषमता का विरोध करते है- कुत्ते ने भी कुत्ते पाले, देखो भाई/पैदल चलने वालों की तो शामत आई।[10]

कवि समाज में फैली सामाजिक विषमता को नष्ट करने की भावना से प्रेरित होकर कविता लिखता है। कवि आम आदमी, श्रमिक, मेहनतकश, उपेक्षित तथा नारियों पर होने वाले अन्याय जुल्म एवं अत्याचार का विरोध देखने को मिलता है। जिससे उनकी कविता में विद्रोही तथा क्रान्ति की भावना का साक्षात्कार होता है। राजनेता, भ्रष्टाचार, सरकारी नीतियां, पूंजीवादी व्यवस्था, सत्ता लोलुपता आदि के विरोध में कवि का विद्रोहात्मक स्वर सुनाई देता है -दिल ने कहा दलित माओं को/सब बच्चे अब बागी होंगे/अग्निपुत्र होंगे ये अंतिम/विप्लव में सहभागी होंगे।[11]

नागार्जुन ने राजनीति को लेकर अधिक कविताएँ लिखी है। राजनैतिकता का चित्रण करते समय कवि व्यंग्य के प्रहार और विद्रोह की आवाज़ बुलंद करके काव्य साधना करते है। इनमें दल, राजनीति, राजनीतिक दोष, राजनेताओं के आचरण, दोगली नीति एवं दोगला आचरण, राजनीतिक गतिविधियाँ, राजनीतिक उथल-पुथल आदि का वर्णन आता है। नागार्जुन जनता का पक्षधर होने से कवि राजनीति से मुँह नहीं मोड़ सकते है-सच सच बोलो, उसके आगे/तुम क्या थे भाई मोरारजी/सूखे-रूखे काठ सरीखे/पड़े हुए थे निराकारजी।[12]

नागार्जुन काव्य की आत्मा व्यंग्य है। कवि अपनी कविता में समाज के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर व्यंग्य करते हैं अपनी पैनी दृष्टि के माध्यम से सभी विषयों को स्पर्श करते है। विश्वंभर मानव का कहना है कि - हरिश्चंद्र के युग के कुछ साहित्यकारों को छोड़कर पिछले पचास वर्षों में नागार्जुन जैसी तीखी और सीधी चोट करने वाला व्यंग्यकार हमारे साहित्य में नहीं हुआ।[13] निम्नलिखित पंक्तियाँ एक सशक्त व्यंग्यकार की परिचायक है -लटक रही है तलवार रात-दिन इस गर्दन पर/बेकारी की/लाचारी की/बीमारी की/चैन नहीं आराम नहीं है/सपने में भी सुख-सुविधा का नाम नहीं है/तान विषण्ण, मन चिर अशांत है/पल पल हम भयाक्रांत है।[14]

नागार्जुन की कविता में प्रकृति मानव जीवन से जुड़कर आती है। प्रकृति मनुष्य को काम करने के लिए प्रेरक व प्रेरणा देने वाली है। श्रम करने के लिए मनुष्य को उकसाती है, तैयार करती है। नागार्जुन की कविता में प्रकृति के विविध रूपों का वर्णन हुआ है। उनके काव्य में प्रकृति के विभिन्न ऋतु व मासों का वर्णन मानव जीवन से जोड़कर चित्रित किया है -नदी के पेट में चला गया है समूचा गांव/बेघर हो गये हैं लोग/पगला गई है बूढ़ी गंडक।[15]

मानवतावादी स्वर नागार्जुन की काव्य में गूंजता है। आम जनता पर हो रहे अत्याचार एवं जुल्म से कवि का मन पीड़ित होता है। शोषितों के प्रति उनके मन में करुणा का भाव दिखाई पड़ता है। मानवता एवं विश्वबंधुत्व की कल्पना कवि करता है -सतत अभ्युदिन/जन-जन प्रमुदित/सर्व सुखद सुन्दर समाज हो।[16]

नागार्जुन का व्यक्तित्व व कृतित्त्व जैसे बहुमुखी तथा बहुविध है वैसे उनकी काव्य भाषा भी बहुरंगी है। नागार्जुन यह मानते है कि कविता का कथ्य यदि जानदार एवं सशक्त है तो भाषा, शैली व शिल्प अपने आप उसके अनुसार आचरण करता है।

जन सामान्य के भावों को उन्हीं के शब्दों में जन भाषा द्वारा वे अभिव्यक्ति देते है। आम जनता के स्तरों की अभिव्यक्ति के लिए सपाट बयानी भाषा का प्रयोग करते है। इसके कारण काव्य में स्पष्टता तथा प्रवाहीपन नज़र आता है। कवि ने कहीं-कहीं संवादात्मक शैली तथा नाटकीय तत्त्व का

निर्वाह किया है। अन्य जनवादी कवियों की भांति अपनी कविता में फैंटेसी का आधार लिया है। कवि ने नृत्य एवं संगीत की लोक शैली वाली भाषा को अपनाया है। नागार्जुन कविता में चुटीली भाषा का प्रयोग होने से उनकी कविता का व्यंग्य चुभता है। नागार्जुन की कविता में अलंकारों का मोह नहीं दिखाई देता, बल्कि अलंकार कविता के कथ्य को शानदार बनाने में सहायता प्रदान करने का काम करता है। वर्णिक, मात्रिक तथा मुक्त सभी प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। कवि मिथकों, बिम्ब एवं विशेषणों का नूतन प्रयोग करने में सिद्धहस्त है। इस प्रकार अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों पक्षों से नागार्जुन की कविता हिन्दी साहित्य में अपनी अलग पहचान रखती है।

संदर्भ सूची -

1. डॉ. चन्द्रहास सिंह, नागार्जुन का काव्य, पृ. 16
2. (सं.) नामवर सिंह, आलोचना, जनवरी-मार्च, अप्रेल-जून, 1981, पृ. 94
3. नागार्जुन, सतरंगे पंखों वाली, पृ. 48
4. वही, पृ. 15
5. (सं.) शोभाकान्त, नागार्जुन रचनावली, पृ. 60
6. नागार्जुन, रत्नगर्भ, पृ. 17
7. नागार्जुन, तुमने कहा था, पृ. 57
8. वही, पृ. 47
9. नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृ. 125
10. तुमने कहा था, पृ. 53
11. नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृ. 125
12. वही, पृ. 125
13. हरिचरण शर्मा, नये प्रतिनिधि कवि, पृ. 125
14. तालाब की मछलियाँ, पृ. 125
15. वही, पृ. 125
16. वही, पृ. 126

गाँव - कळसार, तहसील-महुवा, जिला-भावनगर, पिन- 364130 (गुजरात)

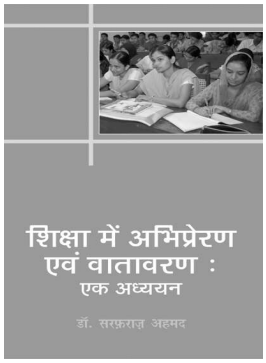

मनुष्य के विकास और उसकी शिक्षा के सन्दर्भ में वातावरण की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य का सम्बन्ध जिस प्रकार के वातावरण से होता है वह उसी के अनुरूप व्यवहार और अधिगम करता है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों के दार्शनिकों ने अपने-अपने सिद्धान्तों के निष्कर्ष के अनुरूप वातावरण की महत्ता दर्शायी है। आदर्शवादी सम्प्रदाय के दार्शनिक वातावरण को स्वच्छ, शुद्ध, निर्मल और संस्कारी बनाने का प्रबल समर्थन करते हैं, जिससे मनुष्य में अच्छे आचरण और कुशल संस्कार का समावेश हो सके। यथार्थवादी सम्प्रदाय के दार्शनिक वातावरण को शिक्षा का प्रमुख अंग मानते हैं,.... दार्शनिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य शिक्षार्थियों को वातावरण के अनुरूप बनाने का समर्थन करते हैं, जबकि व्यवहारवादी सम्प्रदाय के दार्शनिक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने में वातावरण द्वारा प्राप्त ज्ञान को महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

मूल्य 400

शोध आलेख

डॉ. धर्मवीर भारती कृत अंधा युग के पात्र : एक विश्लेषण

डॉ. सैय्यद एकबाल मजाज़

अंधायुग स्वातंत्र्योत्तर काल की मिथकीय नाट्यकाव्यों की प्रतिनिधि रचना है, जिसका प्रकाशन सन् 1955 ई. में हुआ था। इस गीतिनाट्य की कथा का घटनाकाल महाभारत के अट्ठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रभासतीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक की प्रख्यात कथा तक है, किंतु इसमें कुछ प्रसंग उत्पाद और काल्पनिक भी हैं। स्वयं डॉ. भारती ने लिखा हैं कि इस दृश्यकाव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है, उसके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्ध की घटनाओं का आश्रय ग्रहण किया गया है। अधिकतर कथावस्तु प्रख्यात है, केवल कुछ तत्त्व उत्पाद हैं, कुछ स्वकल्पित पात्र और कुछ स्वकल्पित घटनाएँ। वस्तुतः डॉ. भारतीजी ने पौराणिक इतिवृत्त एवं पात्रों के माध्यम से समकालीन विसंगतियो तथा मूल्यविघटन से संदर्भित स्थितियों का निरूपण किया है। अंधायुग में मात्र अंधेपन की कहानी नहीं है, अपितु युगीन परिवेश के मानस व्यास अंधत्व का अंकन है।

अंधायुग में कुल मिलाकर छोटे-बड़े सोलह पात्र है। इनमें से गांधारी का छोड़कर शेष समस्त पुरुष गांधारी के अतिरिक्त अप्रत्यक्ष रूप से कुंती, उत्तरा, कौरव विधवाओं और पाण्डव शिविर में विद्यमान स्त्रियों का उल्लेख किया गया है। अंधायुग में आए हुए सभी चरित्र महाभारत के प्रख्यात पात्र है, इनमें वृद्ध याचक और गूँगे सैनिक तथा प्रहरी कल्पित पात्र है। अंधायुग के पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। 1. प्रधान पात्र 2. गौण पात्र। प्रधान पात्रों में अश्वत्थामा, कृष्ण, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, विदुर, संजय और गांधारी है। गौण पात्रों में कृपाचार्य, कृतवर्मा, बलराम, युधिष्ठिर, वृद्ध याचक, दो प्रहरी तथा व्यास। अंधायुग के पात्रों की योजनाओं में भी एक विलक्षता दिखाई देती है। सहज मानवीय पात्रों से लेकर पूर्णतः दिव्य पात्रों तक का इसमें समावेश हुआ है। इसमें प्रहरी, गूँगा सैनिक, कृतवर्मा, विदुर आदि सहज मानवीय पात्र हैं तो कृष्ण और शिव ईश्वरीय शक्तियों से युक्त दिव्य पात्र है। इन पात्रों में कुछ मानवीय और दिव्य गुणों से समान्वित पात्र हैं। ब्रहमास्त्र और मणि से युक्त अश्वत्थामा, मायावी दुर्योधन, शाप और वरदान देने की क्षमता से युक्त गांधारी, दिव्य दृष्टि संपन्न संजय आदि जिन्हें अर्द्धदिव्य पात्र कहा जा सकता है। शिखंडी का भी प्रासंगिक उल्लेख मिलता है। डॉ. हरिश्चंद्र वर्मा (नई कविता के नाट्य काव्य) ने अंधायुग में चरित्र चित्रण की चार पद्धतियाँ बताई हैं1. विशेष पात्र द्वारा उक्तियों द्वारा चरित्र की व्यंजना 2. विशेष पात्रों की क्रियाओं द्वारा उसके चरित्र की व्यंजना 3. अन्य पात्रों द्वारा उसके चरित्र की समीक्षा 4. कवि द्वारा पात्रों का चरित्र विश्लेषण। डॉ. भारतीजी ने अंधायुग में अपने पात्रों को युगानुरूप सार्थकता प्रदान की है। इन पात्रों के चरित्रांकन में कवि ने उनके पौराणिक रूप की रक्षा के साथ उन्हें समकालीन यथार्थ की भूमि पर भी अंकित किया है। कथ्य योजना के अनुरूप भारती ने पात्रों परिस्थितियों और मनःस्थितियों का चयन भी द्वंद्वात्मक आधार पर किया है। डॉ. संजीव कुमार (अंधायुग निकष पर) का मंतव्य है कि''यद्यपि अंधायुग के पात्रों का आंतरिक गठन जटिल है और उन्हें सत्असत् के सपाट द्वंद्वात्मक साँचे में ढालकर

नहीं देखा जा सकता, यद्यपि यह अवश्य कहा जा सकता है कि अधिकतर पात्रों के विकृत और असंतुलित होने के बावजूद कुछ पात्र सत्प्रवृत्तियों से परिचालित हैं। संजय, विदुर और प्रहरी जैसे गौण पात्रों में भी सात्विकता की झलक मिलती है। अंधायुग के सभी प्रमुख पात्रों में से किसी का भी चरित्र सर्वथा निर्मल नहीं है। पतिव्रता गांधारी, धर्मराज युधिष्ठिर यहाँ तक कि स्वयं मार्यादारक्षक कृष्ण के व्यक्तित्व में कोई न कोई धब्बा अवश्य है।''

यहाँ अंधायुग के प्रमुख पात्रों का चरित्रांकन संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है-

1. अश्वत्थामा

अंधायुग में अश्वत्थामा के चरित्र-चित्रण में डॉ. भारती को सर्वाधिक सफलता मिली है। वह गुरु द्रोण का इकलौता पुत्र है। पिता की निर्मम मृत्यु उसे जीवन से विरत कर देती है। दुर्योधन का वह विश्वासपात्र मित्र है और उसके प्रति होने वाली अनन्य निष्ठा का वह अंत तक निर्वाह करता है। वह पितृभक्त होने के साथ ही एक निर्भय, स्वाभिमानी और समर्थ शूरवीर है। अंधायुग का वह केंद्रिय पात्र है। वही समूचे क्रिया व्यापार का नायक है। अश्वत्थामा और समर्थ शूरवीर है। अश्वत्थामा प्रारंभ से अंत तक कथा प्रसंगों का नेतृत्व करता है। उसी के इर्दगिर्द सारी घटनाएँ और सारे पात्र चक्कर लगाते दिखाई पड़ते है। इसीलिए वह अंधायुग का नायक ठहरता है। महाभारत युद्ध में बचे वीरों में वह सबसे महत्त्वपूर्ण, क्रियाशील और स्वाभिमानी पात्र है। वह आधुनिक मानव का जीवंत प्रतीक है, जो अपने शरीर पर अगणित घाव लिए युगयुगांतर तक जीने के लिए अभिशप्त है। उसके सर्वप्रथम दर्शन द्वितीय अंक में होते हैं। युद्ध में दुर्योधन की पराजय के फलस्वरूप उसका मानसिक तनाव बढ़ जाता है अंतः वह मग्न हृदय योद्धा के रूप में प्रकट होता है। डॉ. भारती ने अश्वत्थामा को एक प्रमुख चरित्र देकर उसके भीतर के द्वंद्व को रेखांकित किया है। उसके हृदय में चल रहे द्वंद्व के मुख्यतः दो कारण हैपहला है युधिष्ठिर के अर्धसत्य के फलस्वरूप शोकाभिभूत द्रोणाचार्य का धृष्टाधुम्न द्वारा वध तथा दूसरा कारण है गदायुद्ध में भीम का नियमोल्लंघन और उसके परिणामस्वरूप दुर्योधन की पराजय।

प्रतिहिंसा से प्रेक्षित होकर ही उसका विकृत, विक्षिप्त, अमर्यादित अहं नृशंसता और पतन के उस निम्न स्तर पर संचरण करता है, जिसके कारण वह युधिष्ठिर, युयुत्सु और व्यास के शब्दों में नराधम और नरपशु तथा स्वयं अपनी ही दृष्टि में अंध बर्बर पशु बन जाता है। युधिष्ठिर के अर्द्धसत्य के फलस्वरूप ही द्रोण का वध हुआ था, तभी से अश्वत्थामा के अंदर जो शुभ और कोमलता था उसकी हत्या हुई। पिता की हत्या को वह भूल नहीं पाता। अतः कहता है''भूल नहीं पाता हूँ मेरे पिता थे अपराजेय/अर्द्धसत्य से ही युधिष्ठिर ने उनका वध कर डाला/उस दिन से/ मेरे अंदर भी/जो शुभ था कोमलतम था/उसकी भ्रूण हत्या/युधिष्ठिर के/अर्द्धष्ठिर के/अर्द्धसत्य ने कर दी/''

अश्वत्थामा के विवेकहीन होने का दूसरा कारण गदायुद्ध में भीम का नियमों-उल्लंघन और उसके परिणामस्वरूप दुर्योधन की हार। वास्तव में परिस्थितियाँ ही उसे प्रतिहिंसा को प्रेरित करती हैं जिससे उसका विकृत, विक्षिप्त और बर्बर रूप सामने आता है। पिता की मृत्यु का बदला लेते समय वह विवेकहीन, प्रतिशोध की आग में जलता हुआ कृपाचार्य से कहता है कि अधर्मी पांडवों का बदला लेने के लिए प्रतिशोधपूर्ण अधर्म ही आवश्यक है। अंतर्द्वंद्वमयी मनःस्थिति में वह कौए का उलूक द्वारा वध देखकर अपना कर्तव्य निश्चित करता है और इसी में अपने अस्तित्व की सार्थकता मानता हैवध केवल वध।

दुर्योधन की पराजय से पीड़ित और क्षुब्ध होकर प्रतिशोध के माध्यम से अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति में कुंठित अश्वत्थामा का आत्मग्लानि एवं आत्मक्षोभ से अपने धनुष्य को तोड़ना और

अंत में वल्कल धारण कर तपोवन में रहने की बात सोचना स्वकीय मनोग्रंथि है। परकीय मनोग्रंथि से परिचालित होकर अश्वत्थामा संजय पर आक्रमण करता है, वृद्ध याचक का वध करता है और कृतवर्मा का वध करने को उघत हो जाता है। उसकी यह मनोग्रंथि संकल्प में बदल जाती है। मनोविज्ञान का संकेत ग्रहण का सिद्धांत यहाँ चारितार्थ होता है। अतः वह कौरवपक्ष का सेनापति बनता है। उलूक द्वारा कौवे के वध की घटनाये उसके वध संबंधी संकल्प की पुष्टि होती है तथा वध करने की प्रक्रिया और पद्धति का संकेत भी मिलता है। और वह चिल्ला उठता है- ''मातुल! सत्य मिल गया बर्बर अश्वत्थामा को।'' वह तुरंत कृतवर्मा और कृपाचार्य को लेकर पाण्डव शिविर के द्वार पर पहुँचता है और वहाँ चट्टान सदृश्य शंकर से संघर्ष में उनकी वंदना करके आशीर्वाद तथा असि लेकर नरसंहार में प्रवृत्त होता है। पांण्डय वंश का समूल नाश करने के उद्देश से उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्ममास का प्रयोग करता है और व्यास के कहने पर भी उसे वापस लेने में असमर्थता प्रकट करता है। इस प्रकार की प्रतिहिंसा और भ्रूण हत्या के अभियोग में कृष्ण उसे शाप देते हैं कि वह युग-युगांतर तक शरीर पर घाव और फोड़े धारण किए हुए गहन वनों में घूमता रहेगा। अश्वत्थामा महाभारत की सारी अनीति, अमर्यादा, पशुता एवं बर्बरता का प्रतीक बन जाता है। परंतु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वह सदा से ही क्रूर था। अपने जीवन के प्रारंभिक दिनों में वह कोमल प्रकृति का युवक था, लेकिन महाभारत के छल-कपट और द्वेष उसे क्रूरकर्मा बना देते हैं। वह दुर्याधन का स्वामिभक्त सेवक है। इसी कारण वह मरणासन्न दुर्योधन को वचन देता है कि वह उसका प्रतिशोध लेगा। वह स्पष्ट वक्ता भी है वस्तुतः उसकी विकृत मनोस्थिति परिवेश सापेक्ष है। क्रूर, नृशंस और हृदयहीन होते हुए भी उसमें वीरता भी है। गांधारी की दृष्टि में वह महावीर है। डॉ. भारती ने अंधायुग के समापन के अवसर पर अश्वत्थामा में परिवर्तन का संकेत दिया है। यादवों की विनाश लीला देखकर आत्मतृष्टि का अनुभव करता है। वह कहता है-''(कृष्ण ने) किया है वही/मैंने जो किया था उस रात फर्क इतना है/मैंने मारा था शत्रुओं को/पर उसने अपने ही वंशजवालों को मारा है।''

व्याघ के बाण से कृष्ण की मृत्यु की घटना को वह देखता है। कृष्ण के तलवे में बाण लगते ही नीला रक्त वह निकलता है जैसा अश्वत्थामा के घावों से बहता था। अश्वत्थामा की पीड़ा शांत हो जाती है, उसे लगता है जैसे भगवान ने उसकी सारी पीड़ा को स्वयं वहन कर लिया हो। इस घटना के बाद उसके मन में प्रभु के प्रति गहरी आस्था का उदय होता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि महाभारत में अश्वत्थामा के हृदय परिवर्तन का उल्लेख नहीं है। डॉ. भारती ने अवश्वत्थामा के चरित्र में एक नई मूल्य चेतना का उन्मेष दिखाई देता है। वह अपने घृणित पूर्वकृत्य पर पुनर्विचार करता है। अंतः अश्वत्थामा महाभारत का तो है ही, वह आधुनिक युग का भी है। उसकी स्थिति आज के किंकर्तव्याविमूढ़ व्यक्ति जैसी है। वस्तुतः अश्वत्थामा अन्याय के विरूद्ध भावना का प्रतिनिधि चरित्र बनकर आधुनिक शोषित व्यक्ति का ही प्रतिनिधित्व करता है।

2. कृष्ण

श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व भरतीय साहित्य एवं संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में अत्यंत विराट और महिमामय है। अंधायुग के कृष्ण गीता के तत्त्वों से युक्त हैं। उन्हें बार-बार प्रभु कहकर पुकारा गया है किंतु उनका स्वरूप प्रभु का उतना नहीं जितना विशिष्ट मानव का है। (डॉ. रामस्वार्थ सिंह, नई कविता पौराणिक गाथा) डॉ. हुकुमचंद राजपाल ने नई कविता की नाट्यमुखी भूमिका में लिखा है-''कृष्ण का चरित्र चित्रण भारती ने नये संदर्भों एवं आयामों में प्रस्तुत किया है। हिंदी काव्य क्षेत्र में प्रथम बार अंधायुग के रचयिता ने उसे 'घोर मानव' के रूप में प्रस्तुत किया है। विशिष्ट यह है

कि कवि उसके प्रभु रूप को भी विस्मृत नहीं कर सकता हैं। डॉ. धर्मवीर भारती ने कृष्ण को अपनी कृतिका के केंद्रस्थ पात्र मानते हुए लिखा है-''इसलिए कृष्ण जो मानवीय आचरण की जटिलता मर्यादा के मर्मज्ञ थे, इस दृश्य-काव्य के केंद्रस्थ पात्र हैं जो सभी पात्रों और परिस्थितियों पर छाए रहते हैं। यद्यपि कृष्ण दिव्य पात्र के रूप में प्रस्तुत हैं तथापि कतिपय पात्रों की दृष्टि में अनेक दुर्बलताएं भी उनमें पाई गई हैं। विदुर उन्हें प्रभु कहते हैं। वृद्ध याचक ने भी कृष्ण को नक्षत्रों की गति से भी ज्यादा शक्तिशाली कहा है। कवि भारती भी कृष्ण के अलौकिक व्यक्तित्व को विस्मृत नहीं कर पाये हैं। तथापि उन्होंने कृष्ण के सामान्य अथवा कूट मानव रूप का उद्‌घाटन भी अन्य पात्रों द्वारा कराया हैं। बलराम उन्हे मर्यादाहीन कूट बुद्धि कहते हैं-''जानता हूँ मैं तुमको शैशव से रहे हो सदा मर्यादाहीन कूटबुद्धि।'' गांधरी एवं अश्वत्थामा कृष्ण को अन्यायी और वंचक कहते हैं। युयुत्सु भी चारों तरफ से तिरस्कृत होने पर कृष्ण को वंचक, कायर और शक्तिहीन कहता है। अर्थात् कृष्ण के प्रति कुछ पात्र आस्थावादी है और कुछ अनास्थावादी। कृष्ण के व्यक्तित्व की विशेषता यह है कि अनासक्त रूप में सभी की आस्था और अनास्था को स्वीकार करते हैं। गांधारी के शाप को भी वे सहज रूप में स्वीकार करते हैं-''जीवन हूँ मैं/तो मृत्यु भी तो मैं ही हूँ माँ! शाप यह तुम्हारा स्वीकार है। मोहान्ध गांधारी कृष्ण को ही युद्ध का रचनाकार और अपने सौ पुत्रों का संहारक मानती है, लेकिन कृष्ण उनके शाप को माँ का आशीर्वाद समझकर स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार कृष्ण के व्यक्तित्व में मानवीय और दिव्य तत्त्वों की सीमा रेखाएँ सर्वथा घुल-मिल गई हैं।

डॉ. भारती ने कृष्ण के तात्विक रूप की भावात्मक व्याख्या करते हुए उन्हें सभी प्राणियों में विद्यमान माना है। अट्‌ठारह दिन के भीषण संग्राम में धराशायी होने वाले प्रत्येक सैनिक के रूप में बार-बार कृष्ण की ही मृत्यु हुई थी। उन्होंने जो शाप उत्तरा के गर्भ पर ब्रहमास्त्र गिराने वाले अश्वत्थामा को दिया है, वह भी प्रकारान्तर से स्वयं को ही दिया है और बाधिक के बाण से मरने का नाटक रचकर वे स्वयं ही अश्वत्थामा के पाप का दण्ड भोगते हैं। उनके तलवों में बाण बिंधते ही अश्वात्थामा की सारी पीड़ा शांत हो जाती है। वस्तुतः प्रभु का मरण न होकर रूपांतरण मात्र है। ''मरण नहीं है ओ व्याध मात्र रूपांतरण है यह।'' कृष्ण मानव व्यक्ति की उदात्त गरिमा से उर्ज्वस्वित हैं। इस अंधयुग में उनका उदात्त संदेश है''लेकिन शेष मेरा दायित्व लेंगे/बाकी सभी...

जीवन और सक्रिय हो उठूँगा मैं बार-बार, निष्कर्ष रूप में कहा जाए तो डॉ. हरिश्चंद्र वर्मा के शब्दों में''भारती के कृष्ण के लौकिक रूप की परिणति अलौकित रूप में हो जाती है। कवि की दृष्टि में कृष्ण एक मानव ही नहीं, एक नैतिक शक्ति भी हैं जो अपने मानवीय और भावात्मक दोनों रूपों में आस्था-अनास्था, मर्यादा-अमर्यादा, सत्-असत् की द्वंद्वात्मक स्थिति से गुज़रती हुई मानव-भविष्य रक्षा के लिए अनास्था अमर्यादा की और असत् के ऊपर आस्था, मर्यादा और सत् की प्रतिष्ठा के पक्ष में हैं।'' (नई कविता के नाट्य काव्य)

3. धृतराष्ट्र

डॉ. भारती ने अंधायुग में धृतराष्ट्र के चरित्र को नवीन रूप दिया है। इस नाट्य काव्य में धृतराष्ट्र एक अंधे और पंगु राजा के रूप में अंकित हैं, जो तेजयुक्त न होकर लाचार है। मोहान्धता और विवेकहीनता के प्रतीक धृतराष्ट्र के संदर्भ में डॉ. पुष्पपाल सिंह का मंतव्य सर्वथा उचित लगता है''अंधायुग में धृतायुग ऐसे नृपति के प्रतीक बन गए हैं, जिसका विवेक अंधा है अर्थात् जो सत्-असत् कर्तव्ययाकर्तव्य एवं पाप-पुण्य के अंतर को देखने में असमर्थ है। धृतराष्ट्र अंधत्व का अंधायुग में बार-बार उल्लेख है- ''मैं था जन्मांध, मैं हूँ जन्मांध, अंधा था मैं....'' इस तरह के आत्मकथन अनेक अवसर पर हैं, पर भारती ने उसके अंधत्व की नई व्याख्या की है। तब

अंधत्व एक दैहिक विकार नहीं रह जाता, वह नैतिक विकार भी हो जाता है। धृतराष्ट्र ने अपने अस्तित्व को निजी अनुभूतियों से सीमीत कर रखा था। यथार्थ जगत से कटे हुए होने के कारण अपनी वैयक्तिक सीमाओं में ही सद् विवेक का निर्णय लेने वाले धृतराष्ट्र अंतर्मुखी संवेदना प्रधान व्यक्ति हैं इसलिए बाहरी यथार्थ और सामाजिक मर्यादा को ग्रहण करने मे असमर्थ हैं। बाहरी यथार्थ या मर्यादा को ग्रहण करने में असमर्थ होना यह दैहिक विकृति है, यही अंधत्य भी है। धृतराष्ट्र की ममता अविवेक से लिपटी थी। उसके मनःपटल पर ममता के कारण अविवेक का अंधकार छाया हुआ था, जिसके परिणामस्वरूप वह कुछ भी देखने में असमर्थ था। धृतराष्ट्र की मोहांधता पूरे युग पर छायी हुई थी, इसीलिए डॉ. भारती ने उस समूचे युग को 'अंधायुग' नाम दिया है। वह गांधारी से कहता है''शांत रहो/गांधरी शांत रहो/दोष किसी को मत दो/अंधा मैं था।''

भीष्म, द्रोण, विदुर और कृष्ण के बारबार समझाने पर भी वह पाण्डवों को उनका राज्य देने के बजाय राज्यलिप्सा में लिप्त रहा और सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन करता रहा। वह जीवन के अंतिम क्षणों तक कौरव पक्ष की झूठी आकांक्षा में डूबा रहता है। धृतराष्ट्र मोहांधता से ग्रस्त संकुचित वृत्ति के मानव के रूप में चित्रित है। धृतराष्ट्र के संदर्भ में डॉ. हरिशचंद्र वर्मा का मतंव्य सर्वथा उचित है''धृतराष्ट्र के स्वभाव की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह अंधताजन्य अपनी सभी दुर्बलताओं को निःसंकोच स्वीकार करते हुए आत्मग्लानि का अनुभव करता है। व्यक्तिगत मूल्यों, ज्ञानहीन आस्थाओं, युद्ध की वास्तविक विभीषिका से अपरिचित आदि के कारण वह युद्ध काल में और उससे पूर्व उस विवेकपूर्ण दूरदर्शिता से वंचित रहा जिसके द्वारा वह युद्ध के संकट को आसानी से टाल सकता था।'' (नई कविता के नाट्य काव्य) अंत में वह गांधारी, युयुत्सु, संजय, विदुर और कौरव वधुओं के साथ युद्धभूमि में जाकर अपने सौ पुत्रों का तर्पण करता है तत्पश्चात् युधिष्ठिर का राज्यभिषेक करता है, लेकिन भीम की कटुक्तियों से मर्माहत होकर गांधारी और कुंती के साथ वनों में चला जाता है और वहाँ प्रज्वलित दावानाल में जलकर भस्म हो जाता है। डॉ. भारती ने अजीवन अंधत्व के अंधियारे में भटकने वाले धृतराष्ट्र को अंत में अग्नि के रूप में ज्योतिवृत्त का वरण करते हुए अंकित किया है।''जीवन भर मैं अंधेपन के अंधियारे में भटका हूँ/अग्नि है नहीं, यह है ज्योतिवृत्त।'' इस प्रकार डॉ. भारती ने अंधे धृतराष्ट ् को मूल्यबोध तथा आस्था के संस्पर्श से उनके अंधत्व का पर्यवसान ज्योति में किया है।

4. युयुत्सु

डॉ. भारती ने युयुत्सु के चरित्र को अपने काव्य नाटक के उपदेश के अनुरूप तथा अपनी उर्वर कल्पना द्वारा परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया है। कवि ने युयुत्सु के चरित्र में परिस्थितियों और मनःस्थितियों का भावात्तेजक टकराव दिखाकर उसके मन के द्वंद्व को उभारा है। वह स्वभावतः एक सत्पात्र है। दुर्योधन आदि सौ कौरव का भाई होते हुए भी युधिष्ठिर के आह्वान पर असत् पक्ष त्याग कर पांण्डवों का पक्ष ग्रहण कर लेता है। किंतु यहीं से उसके जीवन के विडंबनापूर्ण नियति प्रांरभ हो जाती है। युयुत्सु श्रीकृष्ण और धर्मराज को अपना आर्दश मानता है। अपनी अंतरात्मा की आवाज़ को मानकर वह कौरव पक्ष का होते हुए भी पाण्डव पक्ष की ओर से युद्ध में लड़ता है। स्पष्ट है कवि ने युयुत्सु के माध्यम से सत्य की सर्वोच्चता को एक शाश्वत मूल्य के रूप में व्यक्त किया है। युद्ध की अंतिम संध्या को कौरव नगरी में लौटने पर उसे घोर उपेक्षा का सामना करना पड़ता है। वह न इधर का रहता है, न उधर का, आस्था और अनास्था के बीच त्रिशंकु-सा झूलता है। उसका विश्वास था कि कृष्ण का पक्ष ही सत्य है, परंतु उसके विश्वास को ठेस लगती है। माता गांधारी तथा भीम के द्वारा उसे उपेक्षा मिलती है। प्रजा भी घृणा और तिरस्कार करती है। तिरस्कार की चरम सीमा तब

दिखती है जब लोग उन्हें देखकर घरों के दरवाजे बंद कर लेते हैं। युयुत्सु का इतना अपमान, निरादर और तिरस्कार होता है कि वह कहता है-''मैं हूँ युयुत्सु मैं उस पहिए की तरह हूँ जो पूरे युद्ध के दौरान रथ में लगा था। पर जिसे अब लगता है कि वह गलत धुरी में लगा था और मैं अपनी उस धुरी से उतर गया हूँ।'' आस्थावान युयुत्सु अनास्था का शिकार होता है। वह चीखचीखकर कहता है कि सत्य का पक्षधर होकर उसे क्या मिला? भीम द्वारा अपमानित होने पर तथा धृतराष्ट्र और गांधारी के वन की और प्रस्थान करने की पीड़ा से उसकी वाणी लुप्त होकर वह स्वयं भी गूँगे सैनिक की भाँति गूँगा हो जाता है। अंत में कृपाचार्य के हाथ से भाला छीनकर आत्महत्या कर लेता है। वास्तव में युयुत्सु आधुनिक संवदेनशील द्विधाग्रस्त मनुष्य का प्रतीक बनकर अंधायुग में अवतरित हुआ है। डॉ. हरिश्चंद्र वर्मा ने उचित ही लिखा है''युयुत्सु की त्रासदी उन सभी सदाशय युवकों की त्रासदी है, जो परस्पर विरोधी परिस्थितियों की चक्की में पिसते हुए अपनी जीवन संघर्ष जारी रखते हैं और अंत में चारों ओर से उपहास और उपेक्षा के विषय बनकर घुटन, आत्मग्लानि, अवसार, हीनताग्रंथि, टूटन, निराश का दंश सहते हुए आत्महत्या कर लेने पर विवश होते हैं।''

5. विदुर

अंधायुग में विदुर एक आस्तिक व्यक्ति के रूप में चित्रित है। विदुर दूरदर्शी, नीतिज्ञ एवं मानवतावादी दृष्टि का पात्र है। कृष्ण का अनन्य भक्त एवं उनमें गहरी आस्था रखने वाला विदुर तर्कशील भी है। विदुर भले ही कृष्ण का अनुयायी रहा किंतु दोनों पक्षों के लोगों ने मर्यादा तोड़ने पर उनकी आस्था को ठेस पहुँची और वह कृष्ण के प्रति संशय व्यक्त करते हुए कहते हैं-''और अब मेरा स्वर संशयग्रस्त है.../'' अंधायुग में विदुर का चरित्र युग के अनुसार अंकित है। विदुर कौरव पक्ष की अनैतिकता और गांधारी तथा धृतराष्ट्र का कटु आलोचक है परंतु करता कुछ नहीं सब कुछ देख कर उदासीन बना रहता है। यथा- ''मिलूँगा उनसे मैं/ अशकुन भयानक है/पता नहीं संजय/क्या समाचार लाये आज।'' इस उदाहरण से स्पष्ट है अंधायुग में विदुर धृतराष्ट्र का सेवक और अनुयायी है परंतु पाण्डवों के प्रति भी उसके मन आस्था है। अंधायुग में विदुर विवेकी, नीतिज्ञ, मर्यादानिष्ठ, मानवतावादी, स्पष्टता, आस्तिक, आशावादी के रूप में उपस्थिति है। विदुर की आस्थावादिता कई रूपों में दिखाई देती है-जैसे शोक पीड़ित धृतराष्ट्र और गांधारी की सांत्वना करना, युयुत्सु का आत्मीयता से स्वागत करना आदि कई प्रसंगों में विदुर के उदात्त मानवतावादी आचारण की पुष्टि होती है। डॉ. भारती ने विदुर के चरित्रांकन में मौलिकता दिखाई है। यहाँ विदुर आधुनिक मानव की तरह संशयग्रस्त भी है और युद्ध की विभीषिका से तटस्थ रहने वाला भी है। उसके सभी क्रियाकलाप उसकी सात्विकता के सूचक है।

6. गांधारी

अंधायुग में डॉ. भारती ने गांधारी का चरित्रविकास मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि पर किया है। अश्वत्थामा के पश्चात् अन्य प्रमुख चरित्र गांधारी का ही है। संकीर्ण एवं आहत मातृत्व ही उसके व्यक्तित्व का मूल नियामक तत्त्व है, जिसकी अभिव्यक्ति कोमल और कठोर दोनों रूपों में हुई है। झूठा भविष्य बताने वाले याचक के मुख से जयकार सुनकर उसके ममतामय आशावादी हृदय को दुर्याधन की जय की पूर्ण विश्वास हो जाता है''जीत गया/ मेरा पुत्र दुर्योधन/मैंने कहा था, वह जीतेगा निश्चय आज।'' वह दानशील एवं उदार है। कौरवों की पराजय के समाचार से उसकी मनोव्यथा की सीमा नहीं रहती, न वह रोती है, न शौक करती है और न क्रोध करती है, जड़वत् स्थिर होकर रह जाती है। उसका मातृत्व उस समय वेदना से विगलित हो उठता है, जब वह सभी

से उठता है, जब वह सभी पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुनती है और स्वयं कौरव विधवाओं की कलाइयों से चूड़ियाँ उतारती है। उसका मातृहृदय विदुर के मुख से माता शब्द सुनते ही फट जाता है। इसके साथ ही वह आशान्वित है कि दुर्योधन के सिर पर ही विजय का सेहरा बंधेगा।

गंधारी की कोमल मातृत्व भावना उग्र रूप धारण कर कृष्ण को शाप देती है। जब कृष्ण उस शाप का स्वीकार करते हैं उस समय गांधारी को अपनी भूल का अहसास होता है। वह अगाध ममता में परिणत होकर पश्चाताप करती है। गांधारी ममता की मूर्ति होने के साथ-साथ कठोर हृदया भी है। वस्तुतः उसके व्यक्तित्व का मूल नियामक तत्त्व उसकी संकीर्ण मानसिकता और आहत मातृत्व है। वह सामान्य नारी है। अतः उसका आक्रोश प्रतिक्रिया के रूप में कठोर रूप धारण करता है। पाण्डव पक्ष की ओर से युद्ध करने वाले युयुत्सु पर वह कठोर व्यंग्य करती है-''बेटा, भुजाएँ ये तुम्हारी/परक्रम भरी/थकी तो नहीं/ अपने बंधूजनों का वध करते करते?'' उसकी निर्ममता का प्रचंड और विध्वंसक रूप तब दिखाई पड़ता है जब वह संजय के मुख से पाण्डव शिविर में अश्वत्थामा द्वारा किए गए भीषण हत्याकाण्ड का वृत्तांत बड़े मनोयोग से सुनती है क्योंकि इस संहार से उसकी प्रतिहिंसा की भावना को तृप्ति मिलती है और वह संजय से कहती है कि दिव्यदृष्टि से उसे वीर अश्वत्थामा के दर्शन कराए। मरणासन्न दुर्योधन के पड़े होने की सूचना पाकर वह आँखों से पट्टी उतारने का दुःसाहस नहीं कर पाती है और उसकी मृत्यु का समाचार सुनते ही चीखकर मूर्छित हो जाती है। उसी क्षण अश्वत्थामा के मुख से उत्तरा को पुत्रहीन कर देने की प्रतिज्ञा सुनकर उसकी प्रतिहिंसा फिर अंगड़ाई लेती है और वह अश्वत्थामा के शरीर को अपनी दृष्टि से वज्र बना देने के उद्देश्य से आँखों पर से पट्टी उतार फेंकती है।

गांधारी की प्रतिहिंसा उस समय भी देखी जा सकती है जब वह कृष्ण के शाप से पीड़ित दुर्गाधियुक्त अश्वत्थामा को और अपने पुत्र दुर्योधन के कंकाल को देखकर कृष्ण से लोहा लेने का संकल्प करती है और प्रभुता के दुरूपयोग के लिए कृष्ण को शाप देती है- ''कृष्ण सुनों! तुम यदि चाहते हो तो रूक सकता था युद्ध यह।'' जैसे ही कृष्ण उसके शाप को स्वीकारते हैं। उसकी उग्रता ममता में परिणत हो जाती है। इस प्रकार गांधारी चरित्र में कठोरता और ममता दोनों दिखाई देती हैं। गांधारी स्वभावतः ममतामयी माता है, उसकी कटुता का कारण उसका आहत मातृत्व है। एक अर्थ में वह कुंठित है। अतः प्रतिशोध पर उतारू हो जाती है। अंत में वन की प्रचंड अग्नि में जलते हुए उसे बोध होता है कि कृष्ण को दिया हुआ उसी का शाप नगरों और वनों में अग्नि, आत्महत्या, संघर्ष, अधर्म, गृह कलह आदि के रूप में शतधा होकर निखर रहा है और इस प्रकार अपने शाप की ज्वाला की वह स्वयं ही प्रथम समिधा बनती है। कवि ने गांधारी के दायिग्नि में भस्म होने के समय की अनुभूति को आध्यात्मिक रूप देकर अंत में उसके मातृत्व की परिणति आस्था में ही दिखलाई है।

अंधायुग में गांधारी एक आधुनिक व्यक्तित्व लेकर अवतरित हुई है। डॉ. भारती ने उसका चरित्र नवीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। वह एक जागरूक, बुद्धिवादी और क्रांतिकारी विचारों की नारी है। वह हर बात को तर्क की कसौटी पर दो टूक शब्दों में व्यक्त करती है। उसका विचार है कि महाभारत युद्ध में दोनों पक्षों ने मर्यादा को बार-बार तोड़ा था। गांधारी तथाकथित कृष्ण को प्रभु भी नहीं मानती क्योंकि उन्होंने ही मर्यादाओं को अपने हित में तोड़ा-मरोड़ा है इसलिए वह कृष्ण को वंचक कहकर उनकी निंदा करती है। संक्षेप में गांधारी के चरित्र में ममताजन्य मोह, करूणा, उदारता, पुत्र प्रेम, प्रतिहिंसाजन्य प्रखरता और प्रचंडता, तेजस्विता, स्पष्टवादिता, विवेक, बौद्धिकता, स्वाभिमान आदि प्रमुख विशेषताएँ हैं।।

गौण पात्र

युधिष्ठिर

अंधायुग में युधिष्ठिर का चरित्रांकन प्रासंगिक रूप में हुआ है। वह पाण्डवों में ज्येष्ठ है और विजय के बाद वही राजा बनते हैं। डॉ. भारती ने उस अर्द्धसत्य का सार्थक उपयोग किया है। उनके अर्धसत्य को उन्होंने अपनी आलोचना का विषय बनाया है। जैसे''एक अर्द्धसत्य ने युधिष्ठर के/मेरे भविष्य की हत्या कर डाली है।'' आलोच्य कृति में उनके दर्शन पाँचवें अंक में होते है, जहाँ उन्हें एक चिंतक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वे भावी विकृत युग के विषय में चिंतित है। वस्तुतः विजय के बाद कृष्ण तो शापग्रस्त हुए ही, पाण्डव भी पुण्यहत हो गए। भीम, अर्जुन, नकुल सब टूटे हुए थे। प्रौढ़ विवेक यदि किसी में था तो केवल युधिष्ठिर में। उनकी अंतरात्मा सदैव कचोटती रही कि उन्होंने जो विजय पायी वह पापपूर्ण है। कुरूक्षेत्र के बाद युधिष्ठिर के इस मनोविज्ञान का चित्रण अंधायुग में भारती ने किया है। उनकी दंशपूर्ण अभिव्यक्ति इस प्रकार है-''ऐसे भयानक महायुद्ध को/अर्द्धसत्य, रक्तपात हिंसा से जीत कर/अपने को बिलकुल हारा हुआ अनुभव कर/यह भी यातना है/जिनके लिए युद्ध किया है।'' अतः उन्हें सदैव भावी अमंगल की आहट सुनाई पड़ती है। उन्हें युयुत्सु प्रति गहरी संवेदना है। जब वह मर जाता है तब उन्हें अपना जीवन व्यर्थ मालूम पड़ता है। विजय की विकृति के संदर्भ में युधिष्ठिर का वक्तव्य है- ''और विजय क्या है? एक लम्बा और धीमा/ और तिल-तिल कर फलीभूत होने वाला आत्मघात। इस तरह युधिष्ठिर अपने अर्द्धसत्य से प्रवर्तित व्यापक मूल्य-भ्रंश की संकटपूर्ण स्थिति के प्रतीक हैं।

कृतवर्मा

कृतवर्मा स्वभावतः सत् प्रवृत्तियों से अनुप्रेरित पात्र है। वह अश्वत्थामा के मृत्युपाश से संजय को मुक्त करता है तथा वृद्ध याचक की हत्या करने पर अश्वत्थामा की पाश्विक प्रवृत्ति पर व्यंग्य करता है। पाण्डवों को अश्वत्थामा की सेनापति पद पर नियुक्ति को भी वीभत्स आडम्बर मानता है। उनकी द्विधाग्रस्त मानसिकता इस प्रकार व्यक्त हुई है'कायर नहीं हूँ मैं/ दुःख है मुझे भी दुर्योधन की हत्या का/किंतु यह कैसा वीभत्स आडम्बर है। वह एक ओर तो अश्वत्थामा से उबा हुआ है परंतु दूसरी ओर दुर्योधन के प्रति अंतिम साँसों तक वफादार रहने के अपने निश्चय के कारण उसका साथ देने को विवश है। अश्वत्थामा के आदेश पर वह पाण्डव शिविर दृश्य से उसे भारी आघात पहुँचता है।

कृपाचार्य

अश्वत्थामा के मामा कृपाचार्य के चरित्र का विकास अंधायुग में नहीं हो सका है। वह अश्वत्थामा का सहायक है। वह अश्वत्थामा के आक्रमण से संजय की रक्षा करके अपनी सहृदयता का परिचय देता है। वह अश्वत्थामा द्वारा किए गए वृद्ध याचक की घटना उसे भिन्न बना देती है तथापि इससे पिता की अधर्मपूर्वक की गई हत्या से अश्वत्थामा के प्रति उसकी सहानुभूति की गहनता में कोई अंतर नहीं आता। वह विक्षिप्त अश्वत्थामा की मनःस्थिति के अनुरूप अपनी मनः स्थिति का समायोग बनाये रखना चाहता है। कृपावर्मा के वध को उघत अश्वत्थामा को वह डाँटता भी है और अश्वत्थामा भावुक होकर अकेलेपन का अनुभव करता है तब कृपाचार्य उसे कहता है-''हम सब है, साथ तुम्हारे इस प्रतिहिंसा में/तत्पश्चात् वह अश्वत्थामा का साथ देता है। युयुत्सु के प्रति भी उसे सहानुभूति है। युद्ध के उपरांत वह अभिमन्यु पुत्र परीक्षित को शस्त्र संचालन की शिक्षा देता है, तथापि युधिष्ठिर की संस्कृति में उसका मन नहीं रमता और वह निर्वासन ग्रहण कर वन में चला

जाता है।

बलराम

कृष्ण के बड़े भाई बलराम है जिन्हें शेषनाग का अवतार कहा गया है। अंधायुग में उनकी बड़ी संक्षिप्त भूमिका है, जो महाभारत के आधार पर है। अंधायुग में भी बलराम क्षत्रियोचित ओजस्वी रूप में प्रस्तुत होकर द्वंद्वयुद्ध में भूमि के अन्यायपूर्ण प्रहार की भर्त्सना करता है तथा कृष्ण को मर्यादाहीन, कूटबुद्धि कहकर फटकारता है। जैसे''जानता हूँ मैं तुमको शैशव से। रहे सदा मर्यादाहीन कूटबुद्धि।'' अंधायुग में उसके चरित्र में नई बात यह है कि वह मानों कृष्ण को शाप दे रहा हो। जैसेलेकिन मैं.....वे भी निश्चय मारे जायेंगे अधर्म से।''

महर्षि व्यास

महाभारत के प्रेणता, पराशर एवं सत्यवती के पुत्र महर्षि व्यास भी अंधायुग में है। उनका पहला उल्लेख सात्यक्ति से संजय की रक्षा के प्रसंग में है। दूसरा प्रसंग अश्वत्थामा और अर्जुन द्वारा ब्रह्मास्त्रों के प्रयोग के अवसर पर है। यह प्रसंग भी महाभारत के आधार पर है। व्यास ने अश्वत्थामा और अर्जुन दोनों से ब्रह्मास्त्र लौटाने को कहा था। अर्जुन ने अपना ब्रह्मास्त्र लौटा दिया परंतु अश्वत्थामा ने असमर्थता जतायी तब व्यास ने अश्वत्थामा को नराधम और पशु कहकर ब्रह्मास्त्र के भीषण परिणामों से अवगत कराया। ''ज्ञात क्या तुम्हें है?'' इस प्रकार व्यास का जो कथन महाभारत में है, उसके बीज रूप का विस्तार अंधायुग में हुआ है। डॉ. भारती ने हिरोशिमा में अणुबम के प्रयोग के भयंकर परिणामों से भी प्रेरणा ली है। इस तरह अतीत का मिथकीय वृत्त वर्तमान का इतिवृत्त दोनों संश्लिष्ट हो गये है। व्यास का स्वर सामायिक प्रतीत होता है जिसमें मानवतावादी युग का स्वर है।

संजय

संजय धृतराष्ट्र का पुरोहित, मंत्री, संवाददाता के रूप में चित्रित है। संजय को दिव्य दृष्टि प्राप्त है। संजय अवध्य है। उसे मारने के लिए सात्यकि ने जैसे ही तलवार उठाई तो व्यास ने उसे रोकते हुए कहा कि संजय किसी भी प्रकार वध के योग्य नहीं है। इस प्रसंगों की योजना अंधायुग में भी है। संजय तटस्थ, सत्यद्रष्टा और शब्दशिल्पी है, किंतु अंधों की नगरी में उसे सत्य कथन में तीन रूपों का संकटबोध होता है। 1. परिवर्तित सत्य की अभिव्यक्ति का संकट 2. विकृत अनुभूति से पूर्ण सत्य प्रस्तुत करने का संकट 3. अंधे श्रोताओं से सत्य कहने का संकट जैसे''अंधों को सत्य दिखाने में क्या/मुझको भी अंधा ही होना है।'' कौरव वंश के विनाश का करूणा जनक समाचार सुनाते हुए उसे अपनी स्वायत्तता (प्रदत्त दिव्यदृष्टि) से हाथ धोना पड़ता है। तटस्थ सत्य दृष्टा होने के बावजूद भी उसे सात्यकि और अश्वत्थामा के अकारण आघात से आसन्न मृत्यु के त्रास का अनुभव करना पडता है। जलते हुए वन में गांधारी, कुंती और धृतराष्ट्र को अग्नि की लपटों से बचाने के उद्योग में स्वयं उसके भी घुटने झुलस जाते हैं। इस प्रकार अंधायुग का संजय तटस्थ-दृष्टा, शब्दशिल्पी अर्थात् कवि की भूमिका में होने के साथ-साथ निष्क्रियता का भी प्रतीक है।

वृद्ध याचक

अंधायुग का वृद्ध याचक प्रमुख कल्पित पात्र है। कवि के इस अनूठे किंतु अर्थपूर्ण पात्र के व्यक्तित्व में तीन रूप दिखाई देते है। पहला रूप ज्योतिषी का है, दूसरा याचक और अश्वत्थामा

द्वारा मारे जाने के बाद प्रेतयोनि का तथा तीसरा रूप प्रभुहन्ता व्याध का है। अंधायुग में क्रमशः तीनों रूप प्रकट होते हैं। ज्योतिषी के रूप में उसने कौरवों को पूर्वनिर्धारित विजय की भाविष्यवाणी की थी। फलस्वरूप उसे स्वर्ण मुद्राएँ मिलीं। परंतु इस भविष्यवाणी को कृष्ण ने अपने अनासक्त कर्म से इतिहास को चुनौती देते हुए निरर्थक कर दिया। वृद्ध का याचक हो जाना पूर्व वृद्ध के रूप की कल्पना की गई है। अंधायुग में गांधारी का शाप है कि कृष्ण साधारण व्याध के हाथों मारे जाएँगे। डॉ. भारती की कल्पना है कि स्वयं कृष्ण ने उससे कहा था''अश्वत्थामा ने किया था तुम्हारा वध/ उसका था पाप, दण्ड मैं लूँगा/ मेरा मरण तुमको मुक्त करेगा प्रेतकाया से।'' कृष्ण का कहना है कि हत्या से उनकी मृत्यु नहीं होगी, मात्र रूपांतरण होगा। इस तरह वृद्ध याचक का चरित्र कवि की नवीन मौलिक सृजनशीलता का प्रतीक है।

अंत में कहा जा सकता है कि अंधायुग नाट्य काव्य में कथ्य संक्षिप्त है, पर पात्रों का चरित्रांकन प्रतीकात्मक शैली में कर कवि भारती ने अपने सामर्थ्य का परिचय दिया है। प्रत्येक परंपरागत अर्थ के साथ ही आधुनिक संवदेना को आत्मसात् किए है।

सहायक ग्रंथ-

1. नई कविता के नाट्यकाव्यडॉ. हरिश्चंद्र वर्मा
2. अंधायुग निकष परडॉ. संजीव कुमार
3. स्वातंत्र्योत्तर आख्यान काव्यडॉ. अश्विनी पराशर
4. नई कविता पौराणिक गाथाडॉ. राम स्वार्थ सिंह
5. नई कविता की नाट्य मुखी भूमिकाडॉ. हुकुमचंद राजपाल
6. आधुनिक हिंदी कविता में महाभारत के कुछ पात्रडॉ. पुष्पपाल सिंह
7. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी काव्य में महाभारत के पात्रडॉ. जे. आर. बोरसे
8. अंधायुगडॉ. धर्मवीर भारती

सहायक प्रध्यापक, चिश्तिया कला महाविद्यालय, खुलादाबाद, जि. औरंगाबाद
महाराष्ट्र431101

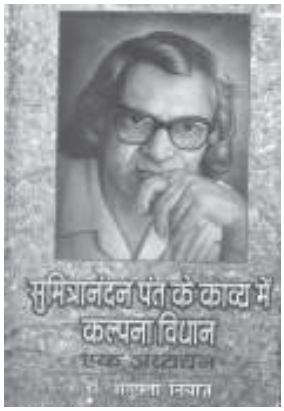

आज के संदर्भ में कबीरदास की ज़रूरत

डॉ. शंकर ए. राठौड

इतिहास गवाह है जब समाज में अंधकार छा जाता है, समाज में अनैतिकता, अत्याचार का बोल-बाला मचने लगता है, भोली-भाली जनता का जीवनयापन दुष्कर हो जाता है, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में अंधपतन होने लगता है, उस समय एक महापुरुष का जन्म होता। प्राचीन काल से अब तक भारत देश के इतिहास में वही हुआ जैसे बुद्ध, तुलसीदास, कबीरदास आदि।

मध्यकाल के निर्गुण संत कबीर दास अपने समय का एक महापुरुष हैं। महात्मा कबीर उस समय की परिस्थितियों से परिचित था, एक तरफ विदेशी आक्रमण और दूसरी तरफ अंतरिक बाह्याडंबर। उस समय भारतीय संस्कृति का ह्रास का समय कह सकते है। उस अंधकार के समय कबीरदास अपना घर जलाकर हाथ....समाज में व्याप्त अनिष्ट रीति-रिवाजों को जड़ से उखाड़ फेंकने का पण लिये बाहर निकलता है। कबीर के लिए कोई जात-पात, धर्म नहीं था। वह ऐसे संत थे कि मानव धर्म की रक्षा करना चाहता था। तन और मन से फक्कड़ और मस्तमौला थे। उनकी वाणी में जादू था। उनकी वाणी की प्रहार लोगों के दिल को छूती थी। कबीरदास वास्तव में मानव दुःखी जनता की सहायता के लिए निकल पड़े। कबीर की वाणी तेज और तलवार के धार जैसी प्रभावशाली थी। व्यंग्य के क्षेत्र में कबीर की तुलना हिंदी साहित्य में किसी से कर नहीं सकते है। कबीर ने जो व्यंग्य किये है वे स्वयं शुद्ध होकर। इस प्रकार समाज में व्याप्त रीति-रिवाजों को अपनी वाणी द्वारा लोगों तक पहुंचाकर उस प्राचीन आडंबर को बदलना चाहा, समाज में क्रांति लाने का प्रयास निर्गुण संत कबीरदास ने किया। कबीर के आक्रोश में एक जीवन है, एक मधुर रस से समाज में व्याप्त मिथ्याचारों की धज्जिया उड़ा दी है। इस तीखी वाणी से वह हिंदू और मुसलमान पर प्रहार किया। कबीर का मानना है कि जन्म से किसी की पारिवारिक श्रेष्ठता को न मान्यता देकर उसके व्यक्तिगत योग्यता पर मूल्यांकन करना चाहिए''जो तू बाम्हन, बाम्हणी जाया आन वाट तू काहे न आये''

कबीरदास कहते है कि ''एक न भूला दोही न भूला, भुला सब संसार।/एकन भूला दास कबीरा जाके रास अधारा।।''

महात्मा कबीर का आविर्भाव ऐसे समय हुआ जबकि देश की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों में उथल-पुथल मची हुई थी। यदि हम उनका समय 15वीं शताब्दी के आरंभ में मानते है और उनकी मृत्यु 16वीं शताब्दी के मध्य को स्वीकार करते है तो निश्चित रूप से उनका समय तैमूरलंग के आक्रमण के उपरान्त से लेकर पठान शासकों में सैयद और लोदी वंशों का शासन की समाप्ति के उपरान्त हुमायूँ के शासनकाल तक जाता है। इस बीच भारत की राज्य-व्यवस्था अस्थिर थी। तैमूर ने सन् 1389 के आक्रमण के बाद तुगलक वंश का शासन समाप्त हो गया था और एक आतंक का वातावरण चारों ओर फैल गया था। सैयद वंश के शासक काल में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ। देश में स्थान-स्थान पर छोटी-बड़ी लड़ाइयाँ होती रही, 1450 ई. से 1526 ई. तक

'लोदी' वंश का दिल्ली पर शासन रहा। लोदी-वंश के शासकों में बहलोल लोदी और सिकन्दर लोदी पराक्रमशील थे फिर भी देश में बराबर विभिन्न राज्यों के बीच लड़ाइयाँ चलती रही। सिकन्दर लोदी से कबीर का सम्पर्क हुआ ऐसा बहुत से लोग स्वीकार करते है। इब्राहीम लोदी अत्यन्त नृशंस व्यक्ति था। उसी के अत्याचार से पीड़ित होकर पंजाब के शासक ने बाबर को भारत पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया था और 1526 की पानीपत की लड़ाई में बाबर ने इब्राहीम को परास्त कर दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया।

कहने का तात्पर्य यह है कि कबीर का युग राजनीतिक उथल-पुथल और शासक परिवर्तन का युग था। इनसे कुछ समय पहले गजनवी और गौरी के आक्रमणों ने भी देश की शासन-व्यवस्था जर्जित कर दी थी। मुसलमान शासकों का दृष्टिकोण भारतीय हिंदू जनता के प्रति अच्छा नहीं था। वे अधिक से अधिक दमन व शोषण के दृष्टिकोण से शासन कर रहे थे। अनेक प्रकार के करों से शोषित जनता बड़ी त्रस्त और ईश्वरोन्मुख प्रवृत्ति की हो गई थी। उसके प्रति जीवन के प्रति उत्साह एवं उल्लास की भावना नहीं थी। राजाओं और बादशाहों के पारस्परिक संघर्ष के फलस्वरूप सामान्य हिंदू और मुसलमान जनता भी एक दूसरे के प्रति बैर और द्वेष की भावना को लेकर चल रही थी। हिंदू और मुसलमान दो अलग-अलग विदेशी और विरोधी धर्म समझे जाते थे जिसके परिणामस्वरूप कट्टर मनोवृत्तियों का विकास हो रहा था। मुस्लिम आक्रमणों और मुस्लिम शासकों द्वारा मंदिरों के ध्वंस, मूर्तियों के भंजन और धर्म-परिवर्तन की क्रूरता के परिणामस्वरूप हिंदू जनता के अंतर्गत मुसलमानों के प्रति शत्रुता और घृणा के गहरे भाव जागृत थे। इसके साथ ही साथ मन्दिरों के ध्वंस और मूर्ति-खंडन के कारण मूर्ति पूजा के प्रति आस्था कम हो गई थी।

हिंदू समाज के अन्तर्गत वर्ण-व्यवस्था के कारण ऊँच-नीच का भाव भी गहरा था। सवर्ण हिंदुओं का अस्पृश्य वर्णों एवं शूद्रों के प्रति कठोर दृष्टिकोण हिंदू पूर्ण रीति से संगठित होने में बहुत बड़ा बाधक था। इसके साथ ही कुलीन और उच्च समाज में आचरण की भ्रष्टता फैली हुई थी। उच्च वर्गीय ब्राह्मण समाज, निम्न वर्ग के अस्पृश्य एवं शुद्रों को मंदिर में प्रवेश कर पूजा और भक्ति का अधिकार नहीं देता था।

संत साहित्य में महान् कार्य धर्म-धर्म, जात-पात के बीच का भेदभाव मिटाने का प्रयास है। कबीर के लिए कोई जात या धर्म नहीं था।

''न जाने तेरा साहिबा कैसा है,/मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे क्या साहिब तेरा बैरा है/चिऊटी के पग तेवर, बाजे, सो भी साहबा सुनता/पंडित होये के आसन मारे लम्बी माला जपता है।।'

आगे चलकर आडंबर के बारे में कबीर कहते है कि-''पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूजों पहाड़''

कबीर की यह क्रांति उस समय के जनता के लिए बहुत बड़ी देन हैं। उस समय वासना अपने पाँव दूर तक पसार चुकी थी। कबीर कही स्त्री की निंदा की है तो पर स्त्री गमन पर विरोध व्यक्त किया है-''परनारी राता फिरे, चोरी बिढ़ता खाई।/ढिवस चरी सरसा रहे समूला जाही।।

आज समाज में स्त्री हत्या, बलत्कार, दहेज के लिए आत्महत्या, परस्त्रीगमन आदि प्रचलित है। इसका विरोध कबीर अपने समय में किया है। कबीर समाज के प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति का शंक फूँका है। वास्तव में अंधकार में भटकती उस समय की जनता को बड़ा उपकार किया। आडंबर के बारे में कबीर कहते है-''पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मोहा पंडित भया ना कोय/एकै आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।।

संत साहित्य अपने समय की देन है, हमारी युवा पीढ़ी अपने आप को समझ नहीं पा रहे है। व्यर्थ अपने समय बिता रही है। भोली जनता भागवान की खोज में भटक चुकी है। इस संदर्भ में कबीर का कहना है- ''कस्तूरी कुंडल बसी मृग दृढ़ बन माही/ऐसा घट-घट राम है दुनिया देखत

नाही।।'

आज बड़प्पन करने वाले लोगों की कोई कमी नहीं है। बड़े धनवान लोग समाज में है, लेकिन किसी को कुछ मढ़ा नहीं करते। वैसे लोगों पर कबीर ने प्रहार किया है-''बड़ा भया तो क्या जैसे पेड़ खजूर।/पंक्षी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।'

भारतीय संतों ने विशेषकर गुरु को अत्यंत महत्त्व प्रधान किये है। संतों का यह कहना है कि संसार में गुरु के समान दूसरी कोई चीज़ नहीं। गुरु मनुष्य को भगवान बना देता है। अज्ञानी को ज्ञानी बनाता हैं इस महत्ता के कारण गुरु भगवान से बड़ा है-''गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागु पाऊ।/बलिहारी गुरु आपणो गोविंद दियो बताये।।''

संत साहित्य में भक्ति की प्रधानता रही है, वह आज भी प्रस्तुत है। संतों के लिए राम का नाम ही सर्वोपरी एक अनमोल चीज़ है। भक्ति के कारण ही हमारा अहम् मिट जाता, भगवान के स्मरण से ही व्यक्ति परिपूर्ण कहलाता है- 'तू तू करता तू भया मुझमें रही न हूँ।/ बारी फेरी बलि बई जित देखू तित तू।।''

संतों ने ज्ञान को महत्त्व देते हुए जब व्यक्ति अज्ञान में अपना जीवन बिताता रहेगा तब तक वह जीवन सार्थक बना नहीं पायेगा ज्ञान के कारण आज हम सभी जीवों में प्रबल है।

संसार नश्वर है, हर व्यक्ति के लिए एक न एक दिन मरना ज़रूर है। इस संसार में आने वाला व्यक्ति कुछ दिनों का महमान मात्र है। आज धन के पीछे लगे है। हमारे रिश्ते नाते टूट चुके है, पैसों के कारण व्यक्ति व्यक्ति के बीच दूरियाँ, वैरत्व पैदा कर चुका है। चाहे व्यक्ति कितना ही धन कमा ले उसको एक दिन सब त्यागना पड़ेगा। कबीर कहते है कि हमारे शरीर की जो इंद्रियाँ हैं, वे चोर के समान है। वे हमें ही लूट रही है, जब शरीर मर जाता है तो राख हो जाता है। बस मुट्टी भर राख बन जाती हैं- ''यह संसार जैसा सेबल का फूल।/दिन दस बहौरा कौ, झूठे रंगी तू भली।।''

कबीर माया को भी जीवन की एक बाधा माना है। आशा ही हमारी है। मनुष्य आशा के कारण ही दुःखी है। आशा के साथ तृष्णा भी व्यक्ति को भटकाती है, आशा, तृष्णा के कारण हम रात-दिन भटकते रहते है। संतों ने विकार दूर करने को भी महत्त्व दिये है। व्यक्ति के पास जब तक विकार है वह कुछ कर नहीं पाता है। सांसारिक आशाओं में फँसकर हम अपनी ज़िंदगी व्यर्थ में बिता देते हैं। अपना कर्तव्य भूल बैठते है-''कली का स्वामी लोभीयाँ पीतली धरी षढ़ा।/राजा दुवाँरा यों फिरले जों हरी हाई गाई।।''

इस प्रकार आज हमारे कलियुग में स्वामी और संन्यासी लोग हो गऐ है। उनको कार, बंगलों की ज़रूरत पड़ गई है। बारहवीं सदी में बसवेश्वर ने कर्म पर जोर दिये थे। आगे संतों भी कर्म को महत्त्व देते हैं। व्यक्ति कर्म से भाग रहा है, कुछ कहता है, लेकिन कुछ करता नहीं, इसी कारण वह दुःखी है-''मन मथुरा दिल द्वारिका काबा काशि जानी।/दसवा द्वार देहुरा तामें ज्योति पिछाणि।।''

अर्थात् मनुष्य ही सब कुछ है। स्वर्ग-नरक तीर्थ यात्रा संतों ने पाखंडी साधु संतों का खंडन किया है। आज हमारे समाज में ऐसे बहुत से पाखंडी साधु हैं, समाज को लूट रहे है। राजनीतिक सत्ता उनके हाथों में है। वैसे पाखंडी साधुओं को समाज से बहिष्कार की ज़रूरत है। कबीरदास कहते है कि साधु के हाथ माला तो फिरते है, लेकिन मन और कही फिर रहा है-''कर सेति माला जपे, हिरदै कहे डंडूल।/पगतौ पाला मैं गिलेया भाजण लागी सूल।।''

कबीरदास ने सत्संगति पर ज़ोर दिया है। अच्छी संगति के कारण अच्छा फल मिलता है। आज इसकी ज़रूरत हमारे समाज में युवा लोगों को है। संतों ने स्नेह पर भी ज़ोर दिये है। इस प्रकार

आज समाज में परस्पर विश्वास की कमी नज़र आ रही है। मनुष्य का शरीर नश्वर और क्षणिक है, एक क्षण उत्पन्न और दूसरा नष्ट। इन जन्म और मृत्यु के बीच कुछ कर जाना हर मनुष्य का सार्थक जीवन है। व्यक्ति अपने मन को संभालकर उसे अपने वश में कर लेना बहुत ज़रूरी है। अगर मन भटकेगा तो निश्चय ही व्यक्ति भटकने लगेगा। आज इस प्रकार की समस्या हमारी युवा पीढ़ी में देखने को मिलती है। युवा लोग बिना उद्देश्य के बिना कामकाज के चुपचाप फिरते रहते है। जो व्यक्ति संसारिक बंधनों से मुक्त है वह जीवित है और उस बंधनों में बधा हुआ व्यक्ति मृत है। अहंकार और आशा को खत्म करने पर व्यक्ति इस मार्ग पर चलता है।

उपर्युक्त कथ्यों को परखने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि आज के समय में एक नहीं हजारों-लाखों कबीरदासों की ज़रूरत है। कबीरदास के समय जो समाज में स्थिति थी वही आज है। समाज में बाह्याडंबर, अन्याय, अत्याचार, स्त्री शोषण, बलात्कार, छूत, जात-पात का सिलसिला चारों ओर नग्न नृत्य कर रहा है। कबीर की हर बात आज के संदर्भ में प्रासंगिक लगती है।

लोगों में अशांति, राजनीति, धर्म, समाज में कही भी देखों अन्याय ही अन्याय है। लोगों का जीना मुश्किल हो गया है। अतः हम कबीरदास को लोकनायक कह सकते है। आज के संदर्भ में कबीरदास का पुनर्जन्म अनिवार्य है। कबीर का चिंतन आधुनिक समय में अनेक विचारों, उत्तेजक, बहसों का केंद्र बिंदु है।

मानव कल्याण एवं मानवाधिकार मनुष्य की तरह जीने के लिए कबीर की ज़रूरत है। कबीरदास या उनका साहित्य केवल मध्यकाल में ही नहीं, आज भी प्रासंगिक और आने वाले कल इसकी बहुत ज़रूरत है। आज संसार में छोटा-सा गाँव बनारस है लेकिन जात, पात, धर्म, भावना, भाषा को लेकर असमानता विरोध, संघर्ष भावना लोगों में पनप रही है, इसे कम करके सुखमय जीवनयापन के लिए समन्वय समर्पित करना बहुत ज़रूरी है। अतः अहम् कबीरदास के सिद्धांत उनके विचार सर्वोपरी प्रासंगिक दिखाई पड़ते है।

सहायक ग्रंथ-

1. कबीर, साखी सुधा
2. कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी
3. कबीरदास और समाज, डॉ. गिरिराज
4. कबीर वाणी के डिटेटर

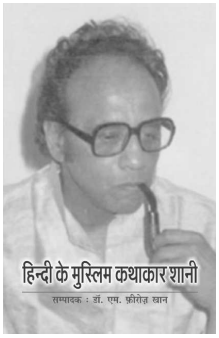

हिन्दी के मुस्लिम कथाकार : शानी

हिन्दी में वह स्त्री-विमर्श का दौर नहीं था। स्त्री यहाँ सिर्फ सहती, घुटती और रोती है, बिना किसी सक्रिय प्रतिरोध के। समाज चाहे मुस्लिम हो या हिन्दू, उसकी यातना का अंत नहीं है। निम्न मध्यवर्गीय समाज में, दुनिया-जहान से कटे एक द्वीप के मानिन्द समाज में, प्रगति, विकास और शिक्षा के अभाव में स्त्री जैसी हो सकती थी वैसी ही यहाँ है। सामन्ती रियासतों के अमल और आदिवासी समाज की लम्बी होती छायाओं के बीच स्त्री जो हो सकती थी, उसी का एक अन्तरंग और विश्वासनीय चित्र 'काला जल' में देखा जा सकता है। मूल्य-500/

क्षेत्रीय भाषाओं पर भूमंडलीकरण का प्रभाव एक अनुशीलन

डॉ. प्रमोद गोकुल पाटील

एखाद देश की अर्थव्यवस्था अंतर्राष्ट्रीय अर्थकरण से संकलित करना, जोड़ना, जोड़ देना ही उस देश की अर्थव्यवस्था का भूमंडलीकरण होना होता है। 1991 के नवीनतम आर्थिक धारणा से ही भूमंडलीकरण, शिथिलीकरण, निजीकरण शब्दों को प्रसार माध्यमों ने और स्वयंसेवी संघटनाओं ने बहुत ही चर्चा का विषय बना। 15 अप्रैल 1994 में भारत सरकार ने प्रत्यक्ष रूप में हस्ताक्षर किये तो भी डंकेल प्रस्ताव का स्वीकार तथा उसका (प्रचलन) अमल में 1985-86 में ही लाया गया था। डंकेल प्रस्ताव के माध्यम से सारे जगत को भूमंडल को एक ही बाज़ार के परिक्षेत्र से जोड़ दिया गया। इसके माध्यम से कृत्रिम व्यापार को तोड़कर मुक्तद्वार अमल में लाया गया। उसी प्रकार अगर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आपको अगर ऋण चाहिए तो अमेरिका की बुशप्रणित अर्थनीति का स्वीकार करना आवश्यक था।

भारत के स्वतंत्रतापूर्व काल में गांधीप्रणित और स्वतंत्रता के बाद नेहरू प्रणित निजी एवं सर्वसमावेशक क्षेत्र के अस्तित्वशाली मिश्र अर्थव्यवस्था का नियोजन प्रचलन एवं उसकी जानकारी सबको थी। भारत देश की तत्कालीन उलझन को आगे सामने कर अनियंत्रित व्यवस्था को स्वीकारा गया है। मार्ग में आने वाले बंधनों को नकारकर जगत अंतर्राष्ट्रीय के मुख्य प्रवाह में आने के सिवाय दूसरा कोई पर्याय ही नहीं है। ऐसी बातों को डंका, प्रचार-प्रसार के माध्यम और अर्थतंत्रों ने पिटवाया। कार्यकरण में यह बताया गया की, अर्थव्यवस्था में सबसे महत्त्वपूर्ण दिक्कत यह है कि व्यापारियों का कृत्रिम बंधन, स्वस्थ धान्य दुकान, किसानों को दिया जाने वाले अनुदान आदि बंद करना, सार्वजनिक हिस्सेदारी कम कर निजी क्षेत्र के हिस्सेदारी को बढ़ावा देना।

डंकेल प्रस्ताव, बुश प्रमाणित अर्थनीति, गांधी प्रमाणित और नेहरू प्रणित अर्थव्यवस्था को नकारना, इसका प्रत्यक्ष असर भारतीयों पर बराबर दिखाई दिया। आम आदमी की ज़रूरते, किसान का अनुदान, व्यापारियों की हिस्सेदारी को नकारात्मक रूप से देखा गया है। अगर भारत देश के मुख्य प्रवाह में आने वाला आम आदमी और किसान को ही इस भूमंडलीकरण के कारण जगह नहीं है तो अपने आप उनके जीवन पर इसका प्रभाव देखा जा सकता है। देश की रीढ़ की हड्डी ही किसान और दीन आम आदमी है तो इसका परिणाम भुगतना ही पड़ा है। मुख्यतः इसका प्रभाव प्रादेशिक क्षेत्र, प्रादेशिक भाषा पर भी पड़ा है, उसी प्रकार आर्थिक, राजनीतिक, विज्ञान-तंत्रज्ञान, अनुसंधान आदि क्षेत्र में भी भूमंडलीकरण का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है।

भूमंडलीकरण का नारा वर्तमान परिवेश में बहुत जोर से सुनाई दे रहा हैं। भूमंडलीकरण का अर्थ है- शासक वर्ग का प्रभुत्व। रिजर्व बैंक के गवर्नर विमल जालान के विचारों में 'भूमंडलीकरण' शब्द का प्रयोग कई तरह से हुआ है। एक अर्थ तो शाब्दिक है कि अब राष्ट्रों के बीच भौगोलिक दूरी कम हो चुकी है। दुनिया काफी छोटी हो चुकी है और कोई भी देश अपना नुकसान करके ही शेष विश्व के खुद को अलग-थलग रख सकता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और अंतर्राष्ट्रीय पूंजी निवेश के

दरवाज़े खोलने का मतलब गरीब देशों और अमीर देशों को 'बकरी' और 'बाघ' की तरह एक ही घाट का पानी पीने की व्यवस्था करना है और ऐसी दोस्ती में अमीर देश गरीब देशों से मुनाफा लेंगे ही।

भूमंडलीकरण का मूल उद्देश्य ही सारी दुनिया एक हैं भूमंडलीकरण के कारण दूर रहने वाला समाज राष्ट्र नजदीक आता है यह सच है पर हमारे पास रहने वाला दूर होता जा रहा है, इसका क्या? भूमंडलीकरण की सारी दुनिया एक ही परिवार मानने की अपेक्षा थी पर इसका मूल अर्थ कही खो गया इसमें स्वार्थ सिद्धी का अर्थ लगया जा रहा है। भूमंडलीकरण का अर्थ उन्हीं को समझा है जिन्हें इसकी आंच लगी है, जिसकी आग से उनके हाथों पर फफोले का निर्माण हुए है और वे फफोले उनकी रात की नींद और दिन का चैन बर्बाद कर रहे है। इससे अमीरी-गरीब में दूरी बढ़ती गयी और इसमें प्रादेशिक भाषा का उपयोग कम हुआ। उसी प्रकार भावना, अहसास, अरमान, आस्था, संस्कार, मूल्य, प्रादेशिक भाषा का दहन होता जा रहा है। मॉल कल्चर के कारण छोटे व्यापारियों का सामान्यों से होने वाला प्रादेशिक भाषा का संवाद ही बन्द हो गया। मॉल में मौन रूप से गये और मौन को साथ में लेकर वापस आये। तात्पर्य यह है कि भाषा का कहीं भी सम्बन्ध नहीं रहा।

कोई भी देश हो उसे अपनी देश की प्रगति करनी हो तो उसी स्थानीय, प्रांतीय तथा संस्कृति को ठिकाना महत्त्वपूर्ण है। इनकी जड़ों को और भी मजबूत करना चाहिए। अगर हम देखते है, कि भारत में अनेक राज्य है और हर राज्य में विभिन्न प्रकार की संस्कृति है। सांस्कृतिक क्षेत्र पर भी सबसे अधिक प्रभाव भूमंडलीकरण ने किया है। हर राज्य की परम्परा रीति, भाषा, रूढ़ि, पहने-ओढ़ने का ढंग, नृत्य करने की पद्धति आदि अलग-अलग होती है। परन्तु जब से भूमंडलीकरण ने भारत में अपना हस्तक्षेप किया उस समय से स्थानीय संस्कृति को बहुत ही बड़ा धक्का पहुंचा। हमें यह पता मालूम हैं कि अपनी स्वतंत्रता, विशेषताऐं, त्याग करने के लिए हर राज्य तैयार है, परन्तु गौर से देखा जाये तो भूमंडलीकरण ने खाली पैसा कमाना ही मुख्य उद्देश्य रखा है।

चीन जैसा देश अपने देश के छात्रों को अपनी मातृभाषा के सिवाय अंग्रेज़ी भाषा के पाठ पढ़ा रहा है। इससे ऐसा परिलक्षित होता है कि सरकार भी अपने भाषा संस्कृति-परस्पर के गुण-विशेष का संवर्धन करने के लिए तैयार नहीं है। भाषा ही ऐसा एक मुख्य माध्यम है जो भावाभिव्यक्ति की अनुगूंज करा सकता है। अपनी मन की बातों की, विचारों को विनिमय। विस्तार करने के लिए अपनी प्रदेश की भाषा ही मूल्यवान होती है। भाषा के माध्यम से ही अपनी रूढ़ि-परम्परा, नृत्य, लोकगीत, साधना, तीज-त्यौहार, उसी प्रकार जीवनयापन के लिए भी उसका अपना महत्त्व है। परन्तु भूमंडलीकरण ने इन क्षेत्रीय भाषाओं पर अपनी अमिट छाप छोड़ रहा हैं भूमंडलीकरण के कारण ही क्षेत्रीय भाषाओं को नई-नई चुनौतियों के साथ अपना स्थान निश्चित कराने हेतु प्रयास करने पड़ रहे है।

भूमंडलीकरण का परिणाम मुख्यतः स्थानीय संस्कृति पहने-ओढ़ने के वस्त्र-आभूषण, खान-पान, लोक संगीत, सिनेमा, रूढ़ि-परम्परा और उसके साथ ही स्थानीय भाषा या प्रांतीय भाषा पर हुआ है। अगर यह ऐसा ही चलता रहेगा तो क्षेत्रीय भाषा/स्थानीय भाषा का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। क्षेत्रीय भाषाओं के कारण स्थानीय लोगों से जुड़े भाव-भावना, अपनापन, सुख-दुःख तीज-त्यौहार, गीत, नृत्य आदि सब कुछ नष्ट हो जायेंगे। अगर ऐसा समयापरान्त हो जाता है तो इसका सबसे अधिक परिणाम क्षेत्रीय भाषा नामशेष होने के लिए होगा। इसे रोकना हो तो भूमंडलीकरण को स्वीकारने पर भी उसे एक सीमा में रहकर उसका इस्तेमाल किया जाये। उसे इतना भी स्वीकृत करने की ज़रूरत नहीं है। वह हम पर छुपे रूप से आक्रमण कर रहा है।

भूमंडलीकरण का सबसे ज्यादा प्रभाव ग्रामीण परिक्षेत्र पर हुआ। ग्रामीण/देहात विभाग पर सबसे

अधिक भूमंडलीकरण का कारण मुनाफा तो हुआ पर उसके अतिरेक के कारण दोष ही अत्याधिक है। उसमें इंटरनेट, केबल चैनल्स, डिजीटल टीवी, रेडियो, मोबाईल आदि ने ग्रामीण परिक्षेत्र पर अपना प्रभाव जमाया। इसका परिणाम यह हुआ कि, एक दूसरे के साथ चर्चा, संवाद कम हुआ। प्रादेशिक क्षेत्र में सबसे अधिक-भाषा के माध्यम से ही संवाद करके सुख-दुःख की चर्चा होती थी, पर अब भूमंडलीकरण के पीछे लोग भाग रहे है, इससे उन्हें पता ही नहीं चल रहा कि हम अपनों से कितने दूर चले गये है। इसी कारण प्रादेशिक/क्षेत्रीय भाषा का महत्त्व अपनी जगह मुख्यतः लाभप्रद हैं।

भूमंडलीकरण के कारण उपभोक्तावाद ने अपना जन्म लिया। ग्रामीण एवं शहरी परिक्षेत्र में रहने वाला मनुष्य एक बाज़ार की वस्तु बनकर रह गया। मनुष्यता ही कम हो गई है। इसका मुख्य कारण हैं कि व्यक्ति अपनी क्षेत्रीय भाषा में किये जाने वाले संवाद, आदान-प्रदान को कम कर रहा है। जहाँ-जहाँ आदान-प्रदान कम हुआ, व्यक्ति ने अपना अस्तित्व ही खो दिया है।

प्रादेशिक/क्षेत्रीय भाषा अपने-अपने स्थानीय परिक्षेत्र का मुख्य जरिया होती है। अंग्रेज़ी भाषा के ख्याति/प्रख्याति के कारण, भूमंडलीकरण के कारण, उसके अत्याधिक प्रचार-प्रसार के परिणामस्वरूप प्रादेशिक भाषा अपना स्वातंत्र्य अस्तित्व ही बना पा रही है। परन्तु अभी तो क्षेत्रीय भाषा में अपना हस्तक्षेप अंग्रेज़ी भाषा ने कराने में अपनी भलाई समझ रही हैं अगर हम सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन करे तो सबसे ज्यादा प्रादेशिक भाषा में अंतर्राष्ट्रीय भाषा ने अपना अस्तित्व प्रमाण सिद्ध करा रही है। जिस देश में क्षेत्रीय भाषा-संपर्क रूप में उसका इस्तेमाल लोगों ने कर दिया और उसकी जगह अगर विदेशी भाषा ने ले ली तो हम स्वतंत्र होकर भी परतंत्र में ही है। जीवित होते हुए भी मृतक समान है। प्रादेशिक भाषा अपनी प्रादेशिकता की धरोहर होती है। जिससे आम आदमी आपसी विचार विमर्श करते है।

पूरी दुनिया तीव्र रूप से बदलाव का अनुभव कर रहा है- भूमंडलीकरण के कारण। इस बदलाव के कारण प्रादेशिक भाषाओं पर सबसे अधिक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। भूमंडलीकरण के कारण मुख्यतः प्रादेशिक संस्कृति पर भी प्रभाव हो रहा हैं, सांस्कृतिक संक्रमण से भाषा, भाव और वेशभूषा तथा भोजन यह संस्कृति के चार मुख्य घटक शीघ्र ही प्रभावित होते है। भूमंडलीकरण में राष्ट्रीय अस्मिता, क्षेत्रीय भाषा पहचान या स्वायत्त का कुछ लेना-देना नहीं होता। इसलिए भूमंडलीकरण ने सबसे ज्यादा क्षेत्रीय भाषाओं पर सबसे अधिक आक्रमण किया है।

सूचना और तकनीकी प्रगति के कारण आज दुनिया में प्रौद्योगिकी क्रान्ति का परिणाम दिखाई देता है। इस प्रौद्योगिकी क्रांति ने दुनिया की प्रादेशिक भाषाओं के मूलरूप में परिवर्तित किया है। इस प्रौद्योगिकी क्रांति के कारण आगे के कुछ वर्षों में मनुष्य में ही कितने और कौन-से प्रकार जैव-वैज्ञानिक बदलाव आ जायेंगे यह बताना कठिन होने के कारण उपग्रह चैनल, कम्प्यूटर और इंटरनेट आदि संचार माध्यमों के कारण प्रभावित हुई प्रादेशिक। भाषा का स्वरूप कैसा होगा अथवा प्रादेशिक भाषा का कौन-सा रूप स्थिर होगा, यह बताना अत्यंत कठिन है।

भूमंडलीकरण के कारण प्रादेशिक भाषाऐं अपनों से दूर जा रही है। बाज़ारीकरण के इस दौर में प्रादेशिक भाषा अपनी युटिलिटी दिखाने में पीछे रह रही है। प्रादेशिक भाषाओं में इंटरनेट, ई-मेल और वेबसाईट की दुनिया में प्रभावपूर्ण नहीं रही है। प्रादेशिक भाषाऐं बदलाव को स्वीकार उस ओर आगे बढ़ रही है, पर उसे अपने मार्ग की अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इतना ही नहीं उसे बहुत बड़ा अंतर पार करना बाकी है। प्रादेशिक भाषाओं का प्रश्न अत्यंत संवेदनशील है। भाषातत्त्व की मदद से ही मानव की चेतना सार्थक बनी है। पौराणिक काल से आज तक मनुष्य की संवेदनात्मक यात्रा प्रादेशिक भाषा की मदद से ही ज्ञान एवं प्रगति के विविध रूपों से अभिव्यक्त करती आ रही है। भूमंडलीकरण समूचे विश्व को ही एक छोटे से ग्राम या कहें कि एक छोटे कम्प्यूटर

के डिब्बे में सिमटा लिया है। इंटरनेट आधुनिक सदी का ऐसा ताना-बाना है जो अपनी स्वच्छंद गति से पूरी दुनिया को अपने आगोश में लेता जा रहा है और इसे कोई सीमा नहीं रोक सकती।

भूमंडलीकरण एक ऐसा माध्यम है जो दो देशों को जोड़ने का साधन मात्र है। परन्तु उसका ऐसा बोल-बाला हुआ कि उसे लोगों ने अलग प्रकार से स्वीकार। तंत्रज्ञान के युग में यंत्रों का कितना इस्तेमाल किया जाये वह अपने पर निर्भर हो परन्तु इसके साथ लोग अपनी मूल प्रादेशिक भाषा को भूलने जैसी कृत्रिमता बनाकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर से अपने आपको जोड़ रहे है। इससे व्यक्ति के व्यक्तित्व में परिवर्तन तो हुआ परन्तु उससे अपने एक महत्त्वपूर्ण अंग को ही अपने से अलग करना चाहा इससे वह कितना बड़ा क्यों न हो जाये पर उसकी आत्मा, हृदय अपनेपन का भाव अपनी प्रादेशिक भाषा से ही जुड़ सकती है। एक यंत्र ने घर के सारे काम करना चाहे परन्तु माँ के हाथ से बनी रोटी और लोरी की आज जगत में कोई भी जगह नहीं ले सकता। यह लोरी अपनी प्रादेशिक भाषा से ही जुड़ सकती है। प्रमाणिकता से मैं कहना चाहूँगा कि अगर उसी माँ का बेटा जर्मनी में शिक्षा या नौकरी कर रहा है, माँ ने उससे बात करना चाहा तो क्या वह अपनी माँ से अपनी प्रादेशिक भाषा में बोलेगा या अंतर्राष्ट्रीय भाषा में? भूमंडलीकरण का सबसे ज्यादा प्रभाव प्रादेशिक भाषाओं पर हुआ है। देश की अखंडता को बनाए रखने वाली, देश को एकता के शृंखला में जोड़ने वाली, आज़ादी के लिए जिससे माध्यम से लोगों को मार्ग क्रमण किया गया, जिसके माध्यम से आम आदमी अपनी बात को रख सकता है, सारे व्यवहार कर सकता है, मुख्यतः अपने प्रदेश की अमूल्य निधि होती है प्रादेशिक भाषा। इसे मुख्यतः जीवित रखना, हम सबका कर्तव्य है।

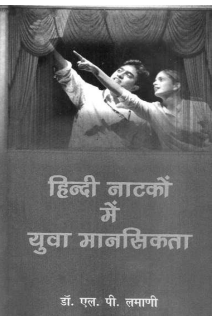

मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में

विभाजित भारत में मुसलमानों की दशा और उनके संघर्ष का उल्लेख मुस्लिम उपन्यासकारों ने बड़ी बेबाकी से किया है। जिसमें राही मासूम रज़ा का आधा गाँव, शानी का काला जल, अब्दुल बिस्मिल्लाह का झीनी-झीनी बीनी चदरियाँ, नासिरा शर्मा का ज़िंदा मुहावरे, मंजूर एहतेशाम का सूखा बरगद, बदीउज्ज़माँ का छाको की वापसी उपन्यास विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इन उपन्यासों के द्वारा भारतीय समाज के आधुनिक युग के मुस्लिम मन को आसानी से समझा जा सकता है। मूल्य 300

हिन्दी नाटकों में युवा मानसिकता

भारतीय युवा का अपना इतिहास है। उसकी मानसिकता को समझने का एक सशक्त साहित्यिक माध्यम है नाटक। प्राचीन काल से लेकर अंग्रेज़ों के आने तक के इतिहास से स्पष्ट होता है कि भारतीय युवा अपनी अस्मिता और व्यक्तित्व के प्रति बहुत सजग नहीं थे। परिवार में बड़ो के आज्ञा पालन में ही अपने जीवन की कृतार्थता माना उनके जीवन का लक्ष्य रहा था।.... 1857 ई. के बाद जब देश अंग्रेज़ी शिक्षा के सम्पर्क में असया तब से धीरे- धीरे....भारतीय युवकों को अपने अस्तित्व की सीमाओं का एहसास होने लगा। **मूल्य –295**

राधेश्याम शुक्ल के दोहा साहित्य में महानगरीय बोध

डॉ. पवन कुमार

आज़ादी के बाद से ही हमारे देश में नगरों एवं महानगरों के प्रति गाँव के लोगों में आकर्षण बढ़ा है। आज़ादी के बाद लोग आजीविका की तलाश में नगरों व महानगरों में आए और यहीं बस गए। शहरों में पूरा जीवन बिताने के बाद भी उन्हें अपने गाँव की संस्कृति और मानवीय मूल्यों की याद बार-बार आती है, जो नगरीय ज़िन्दगी में बिलकुल भी नहीं है। इस पीढ़ी के लोगों में अपने गाँव, अपनी जमीन, अपने माता-पिता से बिछुड़ने का पीड़ादायक बोध है।

दूसरी तरफ वे लोग, जिनका जन्म व पालन-पोषण शहरों में ही हुआ, शहरों में ही पले, बढ़े और जवान हुए हैं, इनके सोचने-समझने का दृष्टिकोण ही अलग है, इनके पास शहराती दृष्टि है। इस प्रकार के लोग शहरों में रहते हुए भी अपने गाँव को भुला नहीं पाते, उनकी स्थिति दो नावों पर सवार आदमी जैसी हो गई है, जबकि दूसरी पीढ़ी शहरी संत्रास झेलती हुई भी अपने वर्तमान से खुश है। उसे न तो अतीत के खोने की चिन्ता है और न ही अपने परिजनों, गाँव तथा संस्कारों से कटने का गम।

कवि शुक्ल जी भी महानगरीय जीवन में रह रहे पहले वर्ग से सम्बन्धित व्यक्ति है। उन्हें भी आजीविका की तलाश में अपना गाँव छोड़कर शहर में आकर रहना पड़ा है। कई सालों से शहर में रहते हुए भी कवि शहरी जीवन को अपना नहीं सके। इस वर्ग की इसी अनुभूत पीड़ा को शुक्ल जी ने बहुत ही सरल किन्तु स्वाभाविक रूप में अपने दोहों में व्यक्त किया है। उनका यह दोहा नगर तथा ग्राम के इसी 'भावबोध' को स्पष्टतः उजागर करता है-महानगर में मैं बसा, मुझमें मेरा गाँव/जिए जा रहा हूँ रखे, दो नावों की पाँव।।

साथ ही कवि शुक्ल जी महानगरीय जीवन में व्याप्त विसंगतियों, कुंठा, घुटन, टूटन, अकेलापन, संत्रास और अजनबीपन की सच्ची तस्वीर पेश करते हैं। इन्हीं विसंगतियों से उत्पन्न 'भावबोध' की अभिव्यक्ति कवि शुक्ल जी के दोहों में हुई है। महानगर की ज़िन्दगी कवि शुक्ल जी को किसी जुआघर की सुबह या मरघट की शाम जैसी लगती है-किसी जुआघर की सुबह, या मरघट की शाम।/महानगर की ज़िन्दगी, तुझको दूँ क्या नाम।।

इसी के साथ जुड़ा है महानगर बोध का वह दर्द जो लोग दिल में लिए घूमते हैं पर ऊपर से खुश होने का दिखावा करते हैं। शहर के इसी दिखावटीपन पर सहज गँवई आदमी को बड़ी खीझ होती है। ऊपर से खुश दिखने वाले लोग अन्दर से उदास और अकेलेपन से त्रस्त है। फिर भी ऊपर से सजे-सँवरे बने रहने की मजबूरी में जी रहे हैं। महानगर के लोग 'इन्द्रधनुष ओढ़े हुए हैं' फिर भी इन लोगों के मन बदरंग हैं। उनके मन बहुरंगी है पर 'मन का रंग' कवि को उनमें नहीं मिलता। सजे-सितार-सा उनका अधूरा व्यक्तित्व केवल मातमी धुन ही दे पाता है। 'पछुवों के मारे हुए' कहकर कवि ने पश्चिमी सभ्यता के आक्रामक प्रभाव की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। महानगर के इसी 'भावबोध' को उजागर करने वाले शुक्ल जी के ये दोहे उल्लेखनीय हैं-दिखने में सब लोग हैं, जैसे सजे सितार।/किन्तु मातमी धुन उठे, जब भी छेड़ो तार।।..../बहुरंगी तन तो मिले, मिला न मन

का रंग।/इन्द्रधुनष ओढ़े हुए, लोग लगे बदरंग।।/...../पछुवों के मारे हुए, खोज रहे हम ठाँय।/अस्वीकृत हैं शहर से, बिछुड़ गया है गाँव।।

महानगर की व्यस्त सुबह, थकी-हारी दोपहरी और शाम आदमी और उसके अहसास को निरन्तर मार रही है। महानगर की इस बेपनाह भीड़ में आम आदमी अपना पता व मुकाम तो क्या अपना नाम भी भूल गया-सा लगता है। ऐसे में जब किसी गँवई मजदूर को अपना गाँव याद आ जाता है, तो वह बचपन की मीठी-मीठी यादों में खो जाता है। उसे लगता है कि षहर की कड़क धूप में किसी ने उसके सिर पर छाँव कर दी हो। कवि शुक्ल जी का यह दोहा इसी भावबोध को दर्शाता है-धूपायित इस शहर में कहीं जो दीखे छाँव।/जाना किसी मजूर को, याद आ गया गाँव।।

महानगरों का माहौल इतना आतंकित और भयग्रस्त बन चुका है कि यहाँ रोज नये-नये जंगली डर उग रहे हैं। महानगर हादसों के नये-नये रूपों का प्रतीक बन गये हैं। शहर की बासी दिनचर्या और नये-नये हादसों के डर ने मनुष्य को इतना कुंठित कर दिया है कि वह सब कुछ देखकर भी विरोध करने की हिम्मत नहीं जुटा पाता है।

आज के सियासी माहौल के चलते शहरों, महानगरों में रोज ऐसे नये-नये हादसे हो रहे हैं, जिनके अमानवीय रूप की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। अब तो ऐसा महसूस होने लगा है कि शहरों में नयापन सिर्फ हादसों का ही है, बाकी सब कुछ बासी हो चुका है, पुराना पड़ गया है। इसी 'भावबोध' से सम्बन्धित शुक्ल जी के ये दोहे देखिए -दहशत जारी कर रही, रोज नए फरमान।/रोज जंगली डर उगें, शहरों के दरम्यान।। ...../बासी दिनचर्या वही, वही छाँव औ' धूप।/सिर्फ हादसों के यहाँ, नये-नये हैं रूप।।

इसी महानगरीय सभ्यता की देन है, झोंपड़ पट्टी का अभिशप्त जीवन। गाँव से शहरों में पलायन का परिणाम स्पष्ट दिखाई देता है। एक ओर गगनचुम्बी इमारतें और दूसरी ओर खाली गंदी जगह पर, गंदे नालों के आस-पास बसी हुई झोंपड़ पट्टी दिखाई देती हैं। शहर की बड़ी-बड़ी इमारतों को बनाने वाले मज़दूर जगह-जगह पर झोपड़ पट्टी वाला नरकीय जीवन बिता रहे हैं। झुग्गियाँ न जाने कितनी बार उजड़ती और बनती है। कितने नये-नये उपनगर बसाकर भी इन झुग्गी झोंपड़ियों का कोई ठौर-ठिकाना नहीं। 'नालों पर उजड़ा बसा' यह 'झोंपड़ पट्टी ग्राम' उन अभिशप्तों का है, जिनकी सुबह दिहाड़ी पर गई है। शाम को थककर लौटे ये मजदूर रूखा-सूखा खाकर वापस सो जाते हैं, इनकी रातें सपनों में बीतती है। ये झोपड़ियाँ रात भर सूरज के नाम खत लिखती हैं। कवि शुक्ल जी के दोहे महानगर बोध की विसंगतियों से उत्पन्न इसी 'भावबोध' को बड़ी हार्दिकता से पेश करते हैं-सुबह दिहाड़ी पर गई, थककर आई शाम।/लिखे रात भर झोंपड़ी, खत सूरज के नाम।।

यद्यपि आज के गँवई गाँव भी धीरे-धीरे महानगरों की विसंगतियों के शिकार होने लगे हैं, फिर भी तुलनात्मक दृष्टि से वहाँ आज भी संवेदना का व्यावहारिक पक्ष जीवित है। शहरी चमक-दमक के पीछे जो तन्हाई है, उसे जब एब गँवई मजदूर साक्षात् अनुभव करता है, तब उसे अपना गँवई गाँव अच्छा लगने लगता है। इसी 'भावबोध' को इस दोहे में इस प्रकार व्यक्त किया गया है -हलों की तनहाइयाँ, ज्यों-ज्यों हुई करीब।/बहुत भला लगने लगा, गँवई-गाँव का गरीब।।

महानगरों के परिवेश का वर्णन करते हुए कवि शुक्ल जी कहते हैं कि यहाँ के घर तो खुले हैं, परन्तु खिड़कियाँ तंग हैं अर्थात् बाहर से विशाल दिखने वाले लोग अन्दर से इतने संकीर्ण हो चुके हैं कि उन्हें किसी से कुछ लेना-देना नहीं रह गया है। अपने-अपने ढंग से लोग जिए जा रहे हैं। महानगर की ज़िन्दगी इस सर्द परिवेश से गर्म सवाल पूछती प्रतीत होती है। ऐसे माहौल में लोगों का जीना मुहाल हो गया है। महानगरों की विसंगतियों से उत्पन्न इसी 'भावबोध' को कवि शुक्ल जी ने अपने दोहों में व्यक्त किया है -खुले-खुले घर तो बहुत, किन्तु खिड़कियाँ तंग।/समझदारियों

के यहाँ, अपने-अपने ढंग।/.....पूछ रही है ज़िन्दगी कितने गर्म सवाल।/सर्द हुआ परिवेश है, जीना हुआ मुहाल।।

गँवई-गाँव से शहर में आया मजदूर जब ऊँची-ऊँची इमारतों को देखता है, तो वे उसे नुमाइशी भीड़ की तरह लगती हैं तो उसका 'पंछी मन' उसे घर वापस चलने के लिए कहता है, वहीं उसका नीड़ संभव नहीं लगता। शहर, महानगर, अपनी सुख-सुविधा के लिए गाँव की माटी भी खरीद रहे हैं। कवि शुक्ल जी चिन्तित हैं कि जायसी, तुलसी, शेख फरीद की मिट्टी ही नहीं रही तो अब वे कहाँ पैदा होंगे। इसी 'भावबोध' को कवि शुक्ल जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है -लगी मकानों की यहाँ है, नुमाइशी भीड़।/चल मन-पंछी घर चले, जहाँ सहज है नीड़।।/...../शहरी सुविधा गाँव की, माटी रही खरीद।/कहाँ उगेंगे जायसी, तुलसी, शेख, फरीद।।

कवि शुक्ल जी के दोहों में आधुनिक युगबोध का निहायत अनुभूत चित्रण हुआ है। क्या गाँव, क्या शहर, सभी जगह झूठ, लालच, क्रोध, छल-कपट की ऐसी हवा चल पड़ी है, जिससे सारा वातावरण विषैला-सा लगने लगा है, परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि लोग इसे निखार मानते हैं। ऐसा युग में होता आ रहा है, फिर भी लोग अनफिट पुर्जों की तरह जिए जा रहे हैं। लोगों के इसी मानसिक भावबोध को कवि शुक्ल जी ने अपने दोहों में व्यक्त किया है -क्या गुलशन, क्या बागवाँ, कैसी चली बयार।/सब कुछ है बदरंग पर, कहते लोग निखार।

कवि शुक्ल जी महानगरीय बोध के कारण लोगों की बदलती मानसिकता को देखकर चिन्तित हो उठते हैं। क्या जमाना आ गया है कि लोग 'पत्थर' दिल हो गये हैं, उनके अन्दर 'संवदेना' नाम की चीज़ ही नहीं रह गई है। आज के लोगों की इसी संवेदनशून्यता पर शुक्ल जी कह उठते हैं -दुःख किसके बाँटे कोई, कौन किसे दे धीर।/अपना-अपना बोझ है, अपनी-अपनी पीर।।/.....लोग संगमर्मर हुए, हृदय हुआ इस्पात।/बर्फ हुई संवेदना, खत्म हुई सब बात।।

कवि शुक्ल जी देश में जंगली आग की तरह फैल रहे आतंकवाद, लूटपाट और चोरी की घटनाओं से चिन्तित होकर अपने हिरना-मन की प्यास को किसी अहेरी के हाथ का षिकार होने से बचने की सलाह देते हैं। कवि कहता है कि एक तरफ भोली शराफत है और दूसरी तरफ बेपीर, बेदर्द युग है। जिस प्रकार शिकारी अपने तीखे वार से मृगछौनों को हलाल करता है, उसकी पीड़ा से उसे कोई मतलब नहीं है, उसी प्रकार यह युग शराफत को हलाल कर रहा है, उसे आम आदमी की पीड़ा से कोई मतलब नहीं है। ये सब बातें सहज ही मन को छू जाती हैं -बस्ती में तो है भरी, निरी जंगली आग।/मेरी हिरना-प्यास तू, यहाँ न पानी माँग।।/ .....क्या अनुमाने वक्त तू, हिरना-मन की पीर।/किसी अहेरी हाथ का, तू भी तीखा तीर।।

कवि शुक्ल जी के 'परदेशी पीड़ा' के संदर्भ में लिखे गए दोहे मार्मिकता से भरे पड़े हैं। आजीविका की तलाश में अपना घर, गाँव छोड़कर परदेश में जाकर बसे इन युवकों की मानसिक पीड़ा कवि शुक्ल जी के दोहों में व्यक्त हुई है। परदेश में रहते हुए भी उनका मन अपने वतन की याद में तपड़ता रहता है। माँ की ममतामयी तस्वीर उन्हें बार-बार अपने घर, अपने देश की याद दिलाती रहती है। परदेशी पीड़ा को व्यक्त करते मार्मिकता से भरे ये दोहे देखिए-साँझ ढले, दिन दे गया, ममता वाली पीर।/सँझबाती में झिलमिली, अम्माँ की तस्वीर।/ ...नहीं हुई परदेस की, पूरी कभी मियाद।/'अब घर चल' कहती रही, मुझे वतन की याद।।

कवि शुक्ल जी कहते हैं कि गाँव के लोग अपनी संस्कृति और सभ्यता को पीछे छोड़ शहरों में बढ़ते पश्चिमीकरण का अनुकरण करने लगे हैं। एक-दूसरे के दुःख-दर्द में मर-मिटने वाले लोग संवेदनशून्य हो गए हैं, किसी को किसी के दुःख-दर्द से कोई वास्ता नहीं रह गया है। गाँव की इसी बदलती स्थिति का चित्रण कवि शुक्ल जी ने किया है -आग लगी शहरी यहाँ, हुआ आदमी

सर्द।/अब न किसी को व्यापता, किसी गैर का दर्द।।

अब गाँव के संवेदनशील मन को शहर की आग ने निगल लिया है, जिसमें सारी मानवता जलकर राख हो गई है। किसी को किसी के दर्द से कोई मतलब नहीं रह गया है। इसी प्रकार शुक्ल जी ने अपने दोहों में दरिद्र गाँव की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए उस पीड़ा को व्यक्त किया है, जो उन गाँववासियों की ज़िन्दगी का हिस्सा बन चुकी है। गाँवों में सहृदयता, भाईचारा और अपनेपन के माहौल का स्थान, महानगरों में फैले अजनबीपन, संवेदनहीनता, आतंकवाद और दंगा-फसाद ने ले लिया है। इस प्रकार गाँवों की सर्वोपरि खासियत भाईबन्दी, रिश्तों की मिठास, उत्सवधर्मी मन का उल्लास, उछाह सब ओढ़ी हुई शहरी प्रगति की कड़ी धूप में जलकर राख हो गए हैं-दूब गाँव की ज़ल गई, तपी प्रगति की धूप।/रिश्ते, खुशियाँ, प्यार सब, बदले हुए विरूप।

शहर की चिकनी तहजीब पर व्यंग्य करते हुए कवि शुक्ल जी गँवई-गाँव के प्रति अपनापन प्रदर्षित करते हुए कहते हैं कि भोला-भाला गाँव शहर के नक्शेकदम पर चलकर शहरी तहज़ीब को अपनाने गया था, परन्तु फिसलकर अपने ही मुँह के बल जा गिरा। वह न तो शहर का हो सका और न ही गाँव का बना रह सका-तेरे प्यारे शहर की, क्या चिकनी तहजीब।/फिसला मुँह के बल गिरा, गँवई गाँव का गरीब।।

कवि शुक्ल जी का ग्रामीण परिवेश के प्रति जो लगाव है, अपनापन है, मोह है, वह इस दोहे में कुछ इस प्रकार से व्यक्त हुआ है -ओछी खुशियाँ शहर की करके तेरे नाम।/मैं 'कबीर' काशी चला, जहाँ 'हमारो गाम'।।

इस दोहे में कवि का परदेसी मन अन्तिम निर्णय ले लेता है कि वह शहर की ओछी खुशियाँ, अभाव की ज़िन्दगी तथा विछोह की व्यथा इन सब को तिलांजलि देकर अपने घर-गाँव वापस जाएगा ही। कवि राधेश्याम शुक्ल जी को पूरब की पीड़ा की विश्वसनीय समझ रखने वाला, गाँव-गँवई का भावप्रवण मन और दृष्टि मिली है। सम्भवतः इसी कारण कुछ अपवादों को छोड़कर आज के शहराते गाँवों की पीड़ा और छटपटाहट का प्रामाणिक चित्रण उनके दोहों में मिलता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि राधेश्याम शुक्ल ने अपने दोहा साहित्य में महानगरीय बोध की विसंगतियों को बड़े ही मार्मिक रूप में चित्रित किया है। हालाँकि उन्होंने गाँवों पर भी शहरीकरण के प्रभाव को दर्शाया है लेकिन फिर भी उनका केन्द्र बिन्दु महानगरीय बोध को चित्रित करना ही है। सारांशतः कहा जा सकता है कि शुक्ल ने महानगरीय जीवन शैली के दुष्प्रभावों को अपने दोहा साहित्य का आधार बनाते हुए बिलकुल सटीक रूप में महानगरीय बोध का जीवन खाका हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है और संदेश दिया है कि जीवन में सही दिशा एवं गति का होना अनिवार्य है।

संदर्भ-

1. राधेश्याम शुक्ल, दरपन वक्त के, पृ. 31
2. वही, पृ. 31
3. वही, पृ. 32
4. वही, पृ. 32
5. वही, पृ. 32
6. वही, पृ. 31
7. वही, पृ. 23
8. वही, पृ. 31
9. वही, पृ. 36

10. वही, पृ. 31
11. वही, पृ. 25
12. वही, पृ. 25
13. वही, पृ. 26
14. वही, पृ. 26
15. वही, पृ. 21
16. वही, पृ. 36
17. वही, पृ. 40
18. वही, पृ. 31
19. वही, पृ. 31
20. वही, पृ. 19
21. वही, पृ. 19
22. वही, पृ. 33
23. वही, पृ. 24
24. वही, पृ. 27
25. वही, पृ. 27

मकान नं. 1727, सैक्टर-2, रोहतक (हरियाणा)

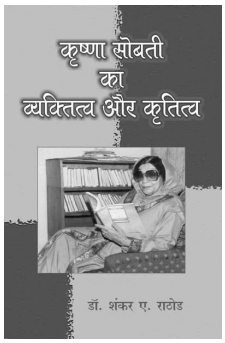

कृष्णा सोबती : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

कृष्णा सोबती समकालीन उपन्यासकारों में एक अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व के साहित्य में उतरती है। उन्होंने अपने विशिष्ट रचनाओं के माध्यम से साहस दिखाया है। उनके सभी रचना उपन्यास हो या कहानी, संस्मरण वे यथार्थ बोध और स्पष्टवादिता के उदाहरण है। जिनके केन्द्र में नारी है। सोबती स्वयं एक नारी होने के नाते उन्होंने स्त्री की पीड़ा को और समस्याओं को गहराई से उजागर किया है। उनके उपन्यासों में स्त्री की पीड़ा वह स्वयं सोबती जी की पीड़ा बन गयी है। उनक रचना में नारी के प्रति उत्पन्न संवेदना सोबती की निजी अनुभव मालूम पड़ता है। उन्होंने रचना द्वारा स्त्री की सम्पूर्ण दुर्बलता को दूर करके इसे समाज में शक्ति प्रदान करने की कोशिश की है। **मूल्य –350**

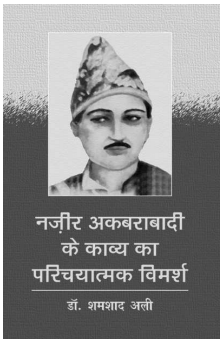

नज़ीर मुख्य रूप से जन अथवा जनता के कवि हैं। विश्व साहित्य में नज़ीर एक ऐसे कवि हैं जिन्हें जन अथवा जनता से जुड़ने अथवा जनता का कवि होने का दंड भोगना पड़ा। जनता का कवि होना साहित्य में उनके लिए अभिशाप सिद्ध हुआ। युगीन आलोचकों ने उर्दू साहित्य में कोई स्थान नहीं दिया। उन्हें शायर स्वीकार न करते हुए तुकबंद कहकर उनकी रचनाओं को नकार दिया गया।....आवामी शायर को आलोचक किसी रूप में स्वीकार करने को तैयार न थे। **मूल्य –150**

अधूरेपन की त्रासद गाथा में उलझे प्रेम का चित्रण : मामूली चीज़ों का देवता

डॉ. रामचंद्र माली

'गॉड आफ स्माल थिंग्स' अरूधंतिराय द्वारा अंग्रेज़ी भाषा में लिखा उपन्यास बुकर सम्मान से सम्मानित है इसका हिंदी अनुवाद निलाभ ने सन् 2004 में किया है। दुनिया के चालीस से भी अधिक भाषाओं में अनुदित इस उपन्यास 'मामूली चीज़ों का देवता' के हिंदी संस्करण के संदर्भ में अरूधंति राय ने कहाँ है कि-''अब तक हुए तमाम अनुवादों के सबसे ज्यादा संतोषजनक उन्हें यही लगा है।''[1]

लेखिका निलाभ ने इस पुस्तक के अनुवाद को संपूर्ण सीमाओं को लांघकर मूल रचना की कथा शैली को क्रमबद्धता प्रदान करके भाषिक शुद्धता और वाक्य रचनाओं का सटीक चुनाव किया है।

उपन्यास के अनुवाद की प्रशंसा करते हुए कृष्णा सोबती ने विमोचन के प्रसंग के अवसर पर कहाँ है कि-''हिंदी समाज इस अनुवाद के माध्यम से अपने परिवार में उनका स्वागत करता है, हिंदी जगत की बौद्धिकता का हवाला देते हुए उन्होंने कहाँ कि भारतीय संवेदना को अंग्रेज़ी में गहरे अभिव्यक्त करने वाली इस किताब को व्यापक तौर पर स्वीकार किया जाएगा।''[2]

उपन्यास का कथानक प्रकृति के गोद में बसा सागर से घिरा केरल प्रांत का है जिसके छोटे से शहर अयमुमन में जीने वाले ईसाई, हिंदू समाज की जातीय व्यवस्था में विभाजित मानसिकता को दर्शाता है।

लेखिका ने कथानक को पूर्वदीप्त पद्धति से अतीत और वर्तमान को जोडा है। जिसमें तीन पीढ़ियों के संघर्ष, उनकी जीने की लालसा, एक दूसरे के प्रति प्यार, संवेदना, अपनापन, त्याग, समर्पण के साथ भरोसा और वफादारी पर भी प्रश्नचिह्न उपस्थित किया है। उपन्यास में सन् 1960 की परिवार की पतन की कहानी को घटनाओं और रहस्यमय जीवन के माध्यम से सुख की चाह में भटकते और अपने अधूरे मन को पूर्णता की लय में संघर्ष करते हुए दिखलाया है। उपन्यास में मानव हताशा के साथ ही जातीय समीकरण के अंतर्द्वंद्व को उद्घाटित किया है और मार्क्सवादी जीवन पद्धति में भी जातीय संस्कार को जोड़कर मानवता के पतन की गाथा को स्वर देने का प्रयास किया है।

साम्यवादी जातीय व्यवस्था में पीसता हुआ समाज के साथ ही केरल के सीरियाई ईसाई जीवन शैली का वर्णन है।

उपन्यास के पुरुष पात्रों में, चाको, एस्ता, वेलुता, कामरेड, पिल्लै फादर मलिगन, नाना पप्पाची रेव रेंड ई जान आइप, थानेदार थामस मैश्यु वेत्या पाप्पन, बुढ़ा परवन, अम्मू का शराबी पति, मिस्टर हॉलिक मुरलीधरन और नारी पात्रों में बेबी काचम्मा, कोच्चु मारिना, मम्माची मार्गेट कोचम्मा, अम्मू, कल्याणी मिलै राहेल, सोमी मोल, इत्यादि पात्रों के माध्यम से लेखिका ने जीवन की विसंगतियों का चित्रण किया है और उनकी अधूरेपन की त्रासद मानसिकता में मामूली चीज़ों के महत्त्व को प्रतिपादित किया है।

उपन्यास की कथा इक्कीस अध्यायों में विभाजित है- 1. पैराडाइज अचार और मुरब्बे 2. पप्पाची का पतंगा, 3. बिग मेन द लालटेन, इस्माफल मैन द मोमबत्ती 4. अभिलाषा टॉकीज 5. धरती पर स्वर्ग 6. कोचीन के कंगारू 7. ज्ञान अभ्यास पुस्तिकाएँ 8. स्वागत है तुम्हारा, प्यारी सोमीभोल 9. श्रीमती पिल्लै, श्रीमती ईपन, श्रीमती राजगोपालन 10. नाव की नदी 11. मामूली चीज़ों का देवता 12. कोच्चुभोम्मन 13. आशावादी और निराशावादी 14. श्रम संघर्ष है 15. पार उतराई 16. कुछ बारों बाद 17. कोचीन हार्बर टर्मिनस 18. इतिहास-घर 19. अम्मू को बचाना 20. मद्रास मेल एवं 21. जीने की कीमत

इन इक्कीस अध्यायों में अतीत और वर्तमान, विचार और यादे, आगे-पीछे, सागर और नाव, सूरज और चन्द्रमा मछली और मगरमच्छ, नारियल पानी से नारियल तेल अचार और मुरब्बे, छोटी-छोटी घटनाओं और चीज़ों में बंधी जीवन की रफ़्तार है।

वाक्य छोटे-छोटे है परंतु विचार और अर्थ का एक विराट बोध कराते है जैसे-

1. चीज़ें एक दिन में बदल सकती है।
2. जैसे-जैसे सूरज आकाश में सफर करता है, उसके रूप बदलते है। शाम को वह पाबन्दी के साथ दिवंगत हो जाती।
3. छोटी-छोटी ही बाते कहते है, बडी चीज़ें अनकही अंदर दुबकी रही।
4. किसी के साथ कुछ भी हो सकता है।
5. तैयार रहना सबसे अच्छी चीज़ है।
6. एक बिगड़ गयी दुनिया में व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास।
7. वह रेत पर कोई पद्चिह्न नहीं छोड़ता था, पानी में कोई लहर नहीं शीशों में कोई प्रतिबिम्ब नहीं।
8. खुशी-क्या वह गिनती में शामिल होती है। सच तो यह है कि जो गिना जा सके सिर्फ वही गिनती में शामिल होता है।
9. वह दुःख की उस गुठली को उजागर कर सकता है जो सुख में छिपी होती है गौरव के सागर में छिपी हुई लज्जा की मछली को।
10. पाप के सागर को चीरकर चढ़ता हुआ भलाई का जहाज।
11. हवा में मक्खियों की भरमार थी।
12. भागता, दौड़ता, नौका-संसार कभी का जा चुका था।
13. वासना को प्रेम से अलग कर दे। या ज़रूरतों को जज़्बात से।
14. उनके जिस्मों ने एक दूसरे को उत्तर दिया।
15. सुख के हर स्पन्दन के लिए उन्हें उसी मात्रा में पीड़ा सहकर कीमत चुकानी होगी।

इन छोटे-छोटे वाक्यों के तहखाने में ज़िंदगी की तस्वीर छिपी हुई है। संभव और असंभव की हर दिशा में लेखिका ने जीवन के हर पक्ष को बहुत सूक्ष्म ढंग से चित्रित किया है।

विष्णु खरे कहते है -गॉड आफ स्मॉल थिंग्स (मामूली चीज़ों के देवता)'' उपन्यास उन सैंकडो छोटे-छोटे ब्यौरो के लिए पढ़ा जा सकता है जो पूरे उपन्यास में बिखरे पडे है। अरूधंती राय की दृष्टि का पैनापन अंग्रेज़ी में बी. एस. नैपाल की और हिंदी में विनोद कुमार शुक्ल की ही बारीक निगाह के नज़दीक पहुँचता है। प्रकृति, व्यक्ति, घर, बाज़ार के सक्ष्म और उपेक्षित पहलुओं, रंगों, परिवर्तनों से वे देख लेती है। जहाँ कही विशिष्ट ज्ञान की ज़रूरत होती है उनकी जानकारी विश्व कोष जैसी है।''[3] ''किरण चाँद की/हाथ तुम्हारे/आये कैसे।''[4]

एस्ता और राहेल दोनों जुड़वा भाई-बहन है। एस्ता सदा मौन रहता है तो राहेल की आँखों में

हमेशा उदासी झलकती है। उसकी एक महत्वाकांक्षी थी कि उसके पास ऐसी घडी हो जिसके समय को वह जब चाहे बदल सके। वह प्रेम और विवाह में असफल रहती है। वह लैरी मक्केंस्लिन नामक व्यक्ति से शादी करती है, लेकिन दोनों का प्रेम नयापन पाते-पाते तलाक में बदल जाता है। वह लैरी के साथ अमेरिका भी जाती है परन्तु वापस आयमनन आ जाती है।

बेबी कॉचम्मा को पादरी मलिगन से प्यार हो जाता है, लेकिन मलिगन उसके रोमांच भरे भाव को समझकर भी अनजान रहते है बाद में वह भिक्षुणि बन जाती है आरे बागवानी में डिप्लोमा करके अपने एक तरफा प्रेम में डूबी रहती है और टी. वी. में डूबी रहती है। अपनी बागवानी से हटकर वह 'द बोल्ड एण्ड द ब्युटीफुल और सान्ता बबिश देखती और यौन साम्राज्य की रक्षा करती रहती है। जैसे अपने घर, फर्नीचर, वायलिन, कुर्सिया, पलंग, सिंगार-मेज से बहुत प्रेम और लगाव था।

फादर मलिगन को रिझाने के आकर्षित करने वाली बेबी कॉचम्माने रोमन कैथोलिक पंथ की दीक्षा भी ली। उधर फादर मलिगन भी हिंदू धर्म के शोध कार्य से इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने हिंदू धर्म स्वीकार कर ऋषिकेश के आश्रम में रहते हुए भी वहाँ से बेबी कॉचम्मा को पत्र भेजते रहे। जहाँ उनका देहांत हो जाता है। चाको और मार्ग्रेट कॉचम्मा का वैवाहिक जीवन भी तलाक में बदल जाता है चाकों की साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव उस पर नहीं हो पाता, लेकिन फिर भी टूटे हुए वैवाहिक जीवन को साधते हुए वे दोनों एक दूसरे से मिलते रहते है। अपनी जीवन के विफलता को बयान करते हुए वह कहता है-''हम युद्धबंदी है....हमारे सपनों में मिलावट कर दी गई है। हम कही के नहीं रहे है। हम अशान्त समुद्रों पर लंगरविहीन जहाज की तरह यात्रा कर रहे हैं। हो सकता है हमें कभी किनारा न मिले! हमारे दुःख कभी उतने दुखद नहीं होंगें न हमारे सुख कभी उतने सुखद! हमारे सपने कभी उतने विशाल न होंगे। न हमारी ज़िंदगियाँ उतनी महत्त्वपूर्ण कि उनकी कोई अहमियत हो।''[5]

उपन्यास में मुरलीधर नामक फौजी का वर्णन भी लेखिका ने किया है। 1942 में वह इंडियन नेशनल आर्मी के फौजियों की कतार में शामिल होकर सिंगापुर जाता है। स्वाधीनता सेनानी है, लेकिन अब न उसके पास न घर है न ताला लगाने के लिए दरवाजे फिर भी पुरानी चाभियों को उसने कमर में बांध रखी है वह कोचीन के रेलवे स्टेशन पर खड़ा गाड़ियाँ गिनता रहता है और अपनी चाभियाँ गिनता रहता है। लेखिका कहती है कि-''वह सरकारों को बनते और टूटते देखता। वह अपनी चाभियाँ गिनता रहता।''[6] वह खुश था क्योंकि उसके पास गिनने के लिए और दोबारा जाँचने-परखने के लिए अपनी चाभियों का गुच्छा है।

वेलुता वेत्या पाप्पन का बेटा था। साम्यवादी पार्टी का कार्यकर्ता उसे बढ़ईगीरी के साथ मशीनों की भी अच्छी सूझ-बूझ थी। वह रेडियो, घड़ियों और पानी के पम्पों की मरम्मत करता अगर वह परवान न होता तो एक अच्छा इंजीनियर बन सकता था। जब अंग्रेज़ मलाबार आये तो छुआछूत से बचने के लिए उसके पूर्वजों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। उन्हें अलग गिरजे, अलग प्रार्थना सभाएँ और अलग पुजारी रखने के लिए कहाँ गया था। आज़ादी के बाद भी आरक्षण का उन्हें कोई फायदा नहीं हुआ था।

वेप्पूता की जाइगरी और कला कौशल पर अम्मू बचपन से ही आकर्षित हो गई थी। अम्मू बेबी कॉचम्मा की बेटी थी। उनका वंशज सीरियन ईसाइयों का था उनका विश्वास था कि वे सौ ब्राह्मणों के वंशज है, जिन्हें धर्मदूत संत थॉमस ने धर्म परिवर्तन करके ईसाई बनाया था। वेलूमा और अम्मू बचपन से एक दूसरे को चाहते थे। वेलूता और अम्मू दोनों छोटी-सी नाव लेकर रात के अंधेरे में सैर करते प्यार करते, लेकिन अपनी मौसी के यहाँ कलकत्ता आती है वहाँ चाय बागान के काम करने वाला असिस्टैंट मैनेजर से उसका विवाह हो जाता है। कुछ ही दिनों में उसे एहसास होता है

कि-''दुल्हे की आंखों में जो हल्की-सी बुखार जैसी चमक को, वह मुहब्बत नहीं थी, न शारीरिक आनंद की संभातंला से उपजी उत्तेजना ही थी, बल्कि हिस्की के लगभग आठ बड़े पेग थे। सीधें नीट।''[7] शराबी के साथ ही साथ वह झूठा और मज़ाकिया स्वभाव का था। उसकी सुंदर बीबी की चाह में उसे नौकरी से निकाला जाता है। बागान के मैनेजर उसे समझाते हुए करता है कि-''तुम्हें पता है, तुम खुशकिस्मत आदमी हो, अद्‌भुत परिवार, सुंदर बच्चे इतनी आकर्षक पत्नी।''[8] तुम इलाज के लिए अस्पताल चले जाओ और पत्नी को मेरे बंगले में देखभाल के लिए भेज दो। मिस्टर हॉलिक के प्रस्ताव को ठुकराकर वह आयमनन वापस आ जाती है। ऐस्ता और राहेल उसके ही जुड़वा बच्चे है।

मायके आने पर उसने तलाकशुदा और मां के कर्तव्यों को परे धकेलकर अपने आपको सजाना शुरू कर दिया था। लेखिका कहती है कि-उसकी चाल भी एक सुरक्षा भरी माँ-जैसी चाल से एक अलहदा किस्म की अलहड़ चाल में तब्दील हो जाती। वे अपने बालों को फूलों से सजाती और अपनी आँखों में जादू-भरे रहस्य सँजोये रहती। वे किसी से भी बात न करती जब वह मुस्कुराती तो उनके गालों में गहरे गड्‌डे पड़ जाते। उसकी छवि का वर्णन करते हुए लेखिका लिखती है कि- अम्मू का ''चेहरा नाजुक और तराशा हुआ था, काली भैवे उड़ते हुए सागर पाखी के डैनों सरीखी धनुषाकार नांक सीधी और सुबुक और त्वचा चमकीली, जायफल जैसी भूरी।''[10]

अम्मू को इसी बीच वेलूता लाल झण्डा उठाये जुलूस में दिखाई देता है। उसका प्रिय मित्र उसकी याद आते ही उसकी गरदन की नसे उभर आयी। वेलूता के यौवन और माँसपेशियों को देखकर वह मोहित हो गई एक तैराक और बढ़ई के शरीर। खूब चमकदार और लुभावना। ऐसा एहसास होता है कि-''उसकी हँसी ही वह एक मात्र चीज़ थी, जो वह लकड़पन से जवानी तक अपने साथ लेता आया था।''[11] अपनी बेटी अम्मू के इस स्पर्श-योग्य सघन से संसार से उसकी माँ ईर्ष्या करती थी, लेकिन आज अम्मू को महसूस होता है कि वह पुरानी लड़ाईयाँ निशान, चोट जख़्म सब झड़ गए हो। उसने अपनी बाहों में भरकर मानों क्षणभंगुर पल में सदियों को समेट लिया था। अम्मू को लगता है कि-अपनी खाली की हुई जगह में वह एक कैफियत छोड़ गया, एक छुई जा सकने वाली झिलमिलाहट, जो इतनी साफ नज़र आती भी जैसे नदी में प्राणी या आकाश में सूरज....उस नन्हें पल में वेलूता ने नज़रे उठायी और ऐसी चीज़ें देखी, जिन्हें उसने कभी नहीं देखा था। चीज़ें जो तब तक पहुँच से बाहर रही थी, इतिहास के आंखों की वजह से ढंकी रही थी।''[12] उसका उपहार देता वह त्यागी समर्पण का स्वरूप वे नावें, डिबियाँ, छोटी-छोटी पवन चक्कियां। उसके उपहारों को अपनी सपाट हथेली को बिना छुए स्वीकारने में उसके मन में ढकेल आया कि एक मात्र उपहार दाता सिर्फ वेलूता ही नहीं है बल्कि वह भी उसे उपहार दे सकती है। उसने अपने आपको तैयार किया एक निर्णय लिया। अचानक उसकी ज़िंदगी में मामूली चीज़ों का उपहार देने वाला यह दानी इतिहास के पन्नों को खोलना चाहता है तो मैं भी उपहार देने के लिए संकल्पशील हूँ क्योंकि-''इतिहास की पुरानी, जख्मों के निशान से भरी खाल में लपेट कर वापस वही घसीट ले जाने के लिए जहाँ वे सचमुच रहते थे। जहाँ प्रेम के कानून यह तय करते थे कि किससे प्रेम करना चाहिए और कैसे और कितना।''[13] लेकिन सच तो यह है कि व्यक्तिगत इच्छा का मानव जीवन में बहुत गहरा महत्त्व है। प्यार एक भावना है जो दो लोगों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और राजनीतिक पहचान को भी उद्‌घाटित करती है। अम्मू ने अपने पागलपन पर चिंता व्यक्त की अपने शरीर के हर अंग को अपनी नज़रों से तौला, परखा उसका जिस्म इतना पतला-छरछरा था वे किसी और ज्यादा गदराये कामुक शरीर के लायक थे।[14] वह अनुभवहीन प्रेम की खोज में अपनी देह की तृप्ति हेतु तड़प रही थी। वह वर्तमान को श्रेष्ठ मानती थी। कल उसके बारे में औरत के भविष्य के बारे में प्रेम के भटकाव के

बारे में लोग क्या कहेंगे या चर्चा करेंगे इस भय से उसकी दशहशत से वह मुक्त थी वह उस तरह की और नहीं थी जो अपना भविष्य बताया जाना चाहती थी। ''अगर उन्हें एक छोटा-सा वर मांगना होता तो शायद वह न जानने का ही होता। न जानना कि हर एक दिन उनके लिए कथा सजोए हुए है...उनका रास्ता किस दिशा मे मुड़ सकता है और मोड़ के पार क्या रखा है।''[15] उसने अपने मन को मजबूत किया। वेलूता पुरानी नाव में उसका इंतज़ार कर रहा था। वह हर रात वेलूता के साथ जाने लगी। समस्त जातीय बंधन को त्यागकर समाज परिवार की सीमाओं को लांघकर वह उसके जिस्म की खास गंध का आनंद लेने लगी। उसने पीढ़ियों से चली आने वाली संस्कारशीलता को दूषित कर दिया, लेकिन ''वेलूता को न तो कम्युनिष्ट पार्टी की सरपरस्ती हासिल थी, न सुरक्षा कि वह अपना मालिक आप था।''[16] अम्मू उसके लिए उसके शरीर का तपन को शांत करने की लालायित थी, वह आनंद का खजाना था। मामूली चीज़ों का देवता था। ''जिसकी त्वचा नमकीन थी आबड़-खाबड़ समुद्र के तट पर नीम अंधेरे बाहर आया की उनकी तरू बढ़ा। वह कौन था? कौन हो सकता था वह? हानि का देवता। मामूली चीज़ों का देवता। उभरे लोम-रंधों और अचानक मुस्कानों का देवता। वह एक बार में एक ही चीज़ कर सकता था। अगर वह उन्हें स्पर्श करता तो वह उनसे बात नहीं कर सकता था, अगर वह प्रेम करता तो वह जा नहीं सकता था, अगर वह बोलता तो वह सुन नहीं सकता था, अगर वह लड़ता तो वह जीत नहीं सकता था।''[17] अम्मू और वेलूता जीने की कीमत को जानते थे। अम्मू एक बेहतर सुख की तलाश में थी और वेलूता उसके लिए सब कुछ त्यागने के लिए तत्पर था। दोनों समुद्र तट पर मिलते है, मुस्कुराते है, किशोरावस्था से जवानी तक उजली खिली-खिली निरछाल मुस्काने। उन्होंने अपनी बाँहे उसके गिर्दन डाल दी।'' उनके जिस्मों ने एक-दूसरे को उत्तर दिया। मानों उन्हें अभी से मालूम था कि सुख के हर स्पन्दन के लिए उन्हें उसी मात्रा में पीड़ा सहकर कीमत चुकानी होगी। उन्होंने अपना भाग्य, भविष्य, प्रेम, आशा को असीमानंद से जोड़ दिया था।'' उन्होंने उसे चुना था क्योंकि उन्हें मालूम था चिपके रहना है। हर बार अलग होते समय वे एक दूसरे से सिर्फ एक छोटा-सा आश्वासन लेते। कल? कल। उन्हें मालूम था कि चीज़ें एक दिन में बदल सकती थी।''[18]

लेखिका ने अम्मू और वेलुता के मौन आकर्षण के कल के सपने कल की खुशियों का समावेश कर उनके गहनतम दैहिक संबंधों में आशावादी भावना का निरूपण करके उनके पवित्र प्रेम को सामाजिक बंधनों में भी जीवित रखा है। दोनों अपनी सीमाएँ और मर्यादाओं को त्यागकर समाज की आंखों से दूर चोरी-छिपे मिलकर अपनी देह की चमक और रोशनी में तेरह रातें गुज़ारते है।

विष्णु खरे कहते है कि-''यदि ईसाई परंपरा में देखे तो वेलूता और अम्मू ऐसे आदम और हव्वा है जिन्होंने प्रतिबंधित प्रेम का फल चखा और उन्हें मानव के स्वर्ग से मृत्युलोक में उतार दिया गया है।''[19]

'मामूली चीज़ों का देवता' उपन्यास में लेखिका ने छोटी-छोटी बातों के महत्त्व को प्रतिपादित किया है, लेकिन उन्होंने यह भी बतलाने की कोशिश की है कि कभी अपने मन के अंदर की भावना को भी पहचानना चाहिए भविष्य की चिंता व्यर्थ है। वर्तमान ही यथार्थ है। 'मामूली चीज़ों का देवता' समय है। जो समय को समझ लेता है उसकी ज़िंदगी में खुशियों का उपहार उसका इंतज़ार करते रहते है।

उपन्यास के अधिकतर पात्रों ने समय की मामूली दस्तक को नहीं पहचाना इसलिए वे अधूरेपन के साये में कुण्ठित जीवनयापन करते है।

उपन्यास का कथानक बचपन, जवानी, बुढ़ापे के सभी पात्रों के अंतरंग संबंधों उनके जीवन की कार्य पद्धतियों, वैचारिक दृष्टिकोणों, उनकी भावनाओं, संवेदनाओं के साथ मानसिक उथल-पुथल

को भी परिभाषित करता है। ज़िंदगी में किसी भी समय कुछ भी हो सकता है। शर्त यह है कि उसे हमेशा अच्छा बनाने के लिए तैयार और तत्पर रहना चाहिए।

निष्कर्ष रूप में कहाँ जा सकता है कि, आशावादी और निराशावादी भावना में श्रम के मूल्य को लेखिका महत्त्वपूर्ण मानते हुए यह भी कहना चाहती है कि देवता मामूली चीज़ों के माध्यम से ही जीवन में सुख बोना चाहते है। सच्चा और आनंदित इंसान वही है जो इन मामूली सी चीज़ों को संग्रहित कर जीवन के अधूरेपन में सम्पूर्णता का निर्माण करे जिससे हमें यह न कहना पड़े की देवता-मामूली चीज़ों के देवता है। परमेश्वर सब की इच्छाओं का दावन भरते है शर्त यह है कि हमें मामूली सी लगने वाली हर चीज़ को सौगात की तरह स्वीकार करके जीवन में खुशियों के साम्राज्य को अपने हौसलों से खड़ा करते रहना चाहिए।

संदर्भ-

1. राजेन्द्र यादव, हंस, अप्रैल 2004, पृ. 88
2. वही, पृ. 88
3. राजेन्द्र यादव, हंस, दिसम्बर 1997, पृ. 74
4. निलाभ, मामूली चीज़ों का देवता, पृ. 116
5. वही, पृ. 67
6. वही, पृ. 77
7. वही, पृ. 52
8. वही, पृ. 55
9. वही, पृ. 57
10. वही, पृ. 58
11. वही, पृ. 194
12. वही, पृ. 195
13. वही, पृ. 195
14. वही, पृ. 243
15. वही, पृ. 244
16. वही, पृ. 282
17. वही, पृ. 349
18. वही, पृ. 359
19. राजेन्द्र यादव, हंस, अप्रैल 2004, पृ. 74

अध्यक्ष-हिंदी विभाग एवं एसोशियट प्रोफेसर, कला वाणिज्य विज्ञान महाविद्यालय, नवापुर, जि. नंदुरबार, महाराष्ट्र-425418

नरेन्द्र कोहली के रामकथात्मक उपन्यासों में सामाजिक चेतना

अनीश कुमार

साहित्य सामाजिक चेतना का एक अनिवार्य तत्त्व हैं समय-समय पर देश में चेतना की चिंगारी फूंककर क्रान्ति का आह्वान साहित्यकारों द्वारा साहित्य के माध्यम से किया गया। सामाजिक चेतना की व्युत्पत्ति दो शब्दों के योग से हुई है। 'समाज' और 'चेतना'। सामाजिक चेतना से तात्पर्य 'सामाजिक जागरूकता' से है। किसी घटना या अन्य किसी कारण के प्रभाव से जब मनुष्य अवचेतन स्थिति से जागृत हो उठता है तब उसमें चेतना अथवा ज्ञानात्मक मनोवृत्ति अंकुरित होती है जिसकी परिणति जागरण की अवस्था होती है। सामाजिक चेतना समाज में क्रान्ति, प्रगति, विकास, उन्नति एवं निरन्तरता लाती है। रत्नाकर पाण्डेय के अनुसार ''समाज की अधोगति और पतनावस्था की विविध प्रतिकूल परिस्थितियों में जो विचारधरा या प्रतिभा आकर्षक दीप्ति बनकर चमक उठे और जिसके प्रभाव से समस्त समाज में नवजागरण की लहर व्याप्त हो जाए वहीं सामाजिक चेतना का यथार्थ वाहक है।''[1] युग विशेष के उत्थान-पतन, उत्कर्ष-अपकर्ष, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धर्मिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय रूढ़ियों, मान्यताओं, आस्थाओं के प्रति जन-सामान्य की रुचि-अरुचि को प्रभावित करने की क्षमता रखने वाली शक्ति ही समग्र रूप में सामाजिक चेतना है।

सामाजिक चेतना के विस्तृत एवं व्यापक स्वरूप का अध्ययन मुख्यतः तीन पहलुओं से किया जाता है। ''ऐतिहासिक-औत्यतिक संज्ञानशास्त्रीय, समाजशास्त्रीय।''[2] ऐतिहासिक दृष्टि से सामाजिक चेतना के विकास को वर्ग पूर्व समाज तथा वर्गीय समाज की चेतना के रूप में देखा जा सकता है। वस्तुनिष्ठ ढंग से सामाजिक चेतना का अध्ययन संज्ञानशास्त्रीय पहलू के आधार पर किया जाता है। संज्ञानशास्त्रीय अध्ययन के अन्तर्गत चेतना तथा सामाजिक ऐतिहासिक व्यवहार को ध्यान में रखा जाता है। सामाजिक चेतना के समाजशास्त्रीय विश्लेषण से मानवीय व्यवहारों तथा सम्बन्धों को समझने एवं उनके विश्लेषण करने में सहायता मिलती है।

सामाजिक चेतना के अभाव में साहित्य पंगु है क्योंकि साहित्य का अभीष्ट लोकमंगल, सामाजिक कल्याण केवल सामाजिक चेतना द्वारा ही सम्भव है। सामाजिक चेतना के माध्यम से सामाजिक मूल्यों, नैतिकता की स्थापना कर साहित्यकार जनसामान्य को सामाजिक रूढ़ियों, विसंगतियों, कुरीतियों के प्रति जागरूकता प्रदान करता है। सामाजिक जीवन का प्रत्येक पक्ष सामाजिक चेतना से प्रभावित होता है। सामाजिक चेतना विचारधारा का रूप ग्रहण कर लेती है जिसके आधार पर सामाजिक सम्बन्धों को बदला जा सकता है, उत्पादन एवं वितरण की शक्तियों को प्रभावित किया जा सकता है और सामाजिक व्यवस्था में अप्रत्याशित परिवर्तन लाए जा सकते हैं।

जब-जब समाज का स्वरूप विकृत होने लगता है तथा समाज विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त हो जाता है, तब इनकी प्रतिक्रिया स्वरूप व्यक्ति की चेतना अर्थात् आत्मा आन्दोलित होती है जिसे

व्यक्ति-चेतना कहा जाता है और जब यह व्यक्ति चेतना समाज के विभिन्न पक्षों पर चिन्तन करती है तो सामाजिक चेतना कहलाती है।

हिन्दी कथा साहित्य में नरेन्द्र कोहली एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। भारतीय संस्कृति में धीरे-धीरे रुढ़ होते जा रहे और जड़ता की स्थिति को प्राप्त हो रहे विश्वासों एवं मान्यताओं को वैज्ञानिक धरातल प्रदान करना नरेन्द्र कोहली की भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी सेवा है। कोहली जी अतीत पर कुछ नहीं लिखते उन्होंने आज तक जितना भी साहित्यसृजन किया वह वर्तमान पर आधारित है। वह चाहे 'रामकथा' हो या फिर महासमर' दोनों ही उपन्यासों में कोहली ने वर्तमान जीवन पर प्रकाश डाला है। पौराणिक उपन्यासों में कोहली जी ने समाज में फैले उन तमाम मुद्दों पर कलम उठाई है जो सामयिक है, ज्वलन्त है और राष्ट्रीय महत्त्व के है। पौराणिक सन्दर्भों, प्रसंगों एवं मूल्यों की युगानुरूप तर्कसंगत, व्यवहारिक एवं आधुनिक व्याख्या द्वारा एक विचार क्रान्ति के सूत्रपात का श्रेय नरेन्द्र कोहली को है। रामकथा भारतीय संस्कृति का अक्षय स्त्रोत है। नरेन्द्र कोहली ने रामकथा को आधार बनाकर जिन उपन्यासों की रचना की है वे समाज में एक सकारात्मक बदलाव का उद्घोष करते हैं। 'दीक्षा' उपन्यास में नरेन्द्र कोहली ने वर्तमान व्यवस्था में घिनौने यथार्थ को प्रस्तुत किया है जहाँ कोई भी अपराधी सत्ताधारियों को बहुमूल्य उपहार देकर दण्ड से बच जाता है। नरेन्द्र कोहली ने ऐसे शासनाधिकारियों को कठघरे में खड़ा कर वर्तमान दूषित समाज पर क्षोभ व्यक्त किया है। विश्वामित्र वाचिक चिंतन करते हुए कहते हैं, ''इसका अर्थ यह हुआ कि शासन, शासन प्रतिनिधि, सेना, सबके होते हुए भी जो कोई चाहे मनमाना अपराध कर ले और उसके प्रतिकार के लिए शासन-प्रतिनिधि के पास उपहार भेज दे, उसके अपराध का परिमार्जन हो जायेगा। यह कैसा मानव समाज है? हम किन परिस्थितियों में जी रहे हैं। यह कैसा शासन है? यह तो सभ्यता-संस्कृति से दूर हिंसा पशुओं से भरे किसी गहन विपिन में जीना है..... ।''[3] आज समाज पतनोन्मुख, निष्क्रिय, शिथिल, इसलिए है क्योंकि समाज को कोई उचित नेतृत्व नहीं मिल रहा। समाज आक्रान्ता के अत्याचारों से भयभीत है। शोषण, अनाचार, दमन के समक्ष आज व्यक्ति बेबस हो गया है। मार्गदर्शक के अभाव के कारण व्यक्ति जड़ हो गया है। किन्तु राम जैसे व्यक्ति के नेतृत्व से समाज और व्यक्ति की यह निष्क्रियता टूटती है, व्यक्ति का भय शक्ति में परिणत हो जाता है। उचित नेतृत्व किस प्रकार व्यक्ति के भीतर जमी भय की परत को पिघला देता है उपन्यासकार ने इसे बड़े ही प्रभावोत्पादक शैली में अभिव्यक्त किया है। राम का आना निष्फल नहीं हुआ-गुरु सोच रहे थे-उस गगन में, जो उन्हें अपने पिता के हत्यारे का नाम बताने के पश्चात् फूट-फूटकर रोया था और इस गगन में, जो मारीच को ढूंढ़ने के लिए लंका तक जाने को प्रस्तुत है, कितना अन्तर है! राम का प्रभाव अमोघ है।[4]

'अवसर' उपन्यास में राजनीतिक षड्यन्त्र, चाटुकारिकता, सत्ताधारियों की उच्छृंखलता, नारी शोषण और राजनीतिक अपराधों का प्रस्तुतीकरण इतनी सजीवता और यथार्थपरक ढंग से किया है कि ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यासकार ने समकालीन समस्याओं को पौराणिक कथा के माध्यम से उठा जन-सामान्य को उसके प्रति चेतना प्रदान की है। वर्तमान समाज में कोई भी मंत्री अपनी कुर्सी से चिपका रहना चाहता हैं तमाम आक्षेपों एवं विराधों के बावजूद भी वह राजनीति सत्ता के सूत्र अपने हाथों से नहीं निकलने देना चाहता। दशरथ भी ऐसे ही पात्र या मंत्री का प्रतिनिधित्व करते हैं। सत्ता के छिन जाने के भय के कारण वे काफी समय तक प्रकृतिस्थ नहीं हो पाते, ''दशरथ अपने हाथ का अधिकार नहीं छोड़ेंगे। दांत झड़ गये तो मसूड़ों से पकड़ेंगे..... जब तक बन पड़ेगा वे अधिकार का भोग करेंगे, उसकी रक्षा करेंगे। राजनीति के सारे सिद्धान्तों, आदर्शों तथा नैतिकता का एकमात्र सूत्र है - विरोध उन्मूलन। विरोधी का उन्मूलन भी.... ।''[5]

'संघर्ष की ओर' उपन्यास में उपन्यासकार ने सर्वसाधरण की शक्ति, उनके सामर्थ्य को राम के मुखमण्डल से निःसृत करवा भीरू जनता में एक नवीन ऊर्जा का संचार किया है। राम अगस्त्य ऋषि से संबोधित होते हुए कहते हैं, ''कोई शस्त्र, कोई आयुध, कोई साम्राज्य जनता से बढ़कर शक्तिशाली नहीं है।''[6] उपन्यास में राम अलौकिक शक्तियों में सम्पन्न न होकर मानवीय शक्ति से आपूरित है। अपने उत्साह, आत्मविश्वास, बल, साहस, दक्षता का परिचय वे कई बार कई प्रसंगों में देते है। उपन्यास में कोई अदृश्य शक्ति उनका संचालन नहीं कर रही अपितु वे मानवीय गुणों, मानवीय शक्ति, मानवीय संवेदनाओं के बल पर अपने अभीष्ट तक पहुँच जाते हैं। अगस्त्य ऋषि के कहने पर कि बाढ़ में चढ़ी हुई नदी के सम्मुख चार इँटे रखकर आशा कर रहा हूँ कि वे इँटे प्राचीर का कार्य करेंगी तो राम अपने अंतःकरण के तेज का, अपने अदम्य साहस को गुरु के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए कहते हैं ये इँटे प्राचीर ही बन जाएंगी और नदी की बाढ़ को बाँध लिया जाएगा।[7] यह ऊर्जा प्रत्येक व्यक्ति के भीतर विद्यमान हैं। हम में भी कुरीतियों, विसंगतियों, विद्रूपताओं को रोकने की आपार क्षमता है किन्तु आज विश्रामप्रियता, कर्त्तव्यविमुखता के कारण हमने इन्हें स्वीकार कर लिया है और साथ ही इस दूषित व्यवस्था के अनुगामी भी हो गए हैं।

'साक्षात्कार' उपन्यास में नरेन्द्र कोहली ने शासनतंत्र की निरंकुशता, भारतीय संस्कृति पर पड़ता पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव जीवन साथी के प्रति ईमानदार, एकनिष्ठ होने संबंधी अपनी दृष्टि को प्रस्तुत कर समाज में आदर्श दाम्पत्य जीवन के उदाहरण को प्रस्तुत किया। सीता आशंकित है कि कही राम शूर्पणखा के वाग्जाल में न फँस जाए किन्तु राम ऐसे विवाहेत्तर संबंधों को केवल अस्वीकार ही नहीं करते प्रत्युत उसकी भर्त्सना भी करते है। वे सीता के संदिग्ध मन को समझाते हुए कहते है- ''प्रश्न यह नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या अपनी पत्नी से सुन्दर स्त्री के मिलते ही पति अपनी पत्नी को छोड़ जाएगा? अपनी पत्नी के प्रति पति की ईमानदारी क्या तभी तक है जब तक उसको उससे अधिक कोई अन्य स्त्री नहीं मिल जाती।''[8]

'पृष्ठभूमि' उपन्यास में रामकथा को उत्स बनाकर समकालीन विद्रूपताओं, सरोकारों को उठाकर नरेन्द्र कोहली ने अभूतपूर्व एवं स्तुत्य प्रयास किया है। अशिक्षा, अस्पृश्यता, मदिरा, आर्थिक वैषम्य, ऐसी ही समस्याएँ हैं जिसका मनुष्य अपने जीवन में साक्षात्कार करता है। नरेन्द्र कोहली जानते थे कि शिक्षा चेतना का पहला सोपान है। कोई भी समाज शिक्षा के अभाव में उन्नति का स्पर्श नहीं कर सकता। सभी वर्गों में शिक्षा को अनिवार्य बनाए जाने संबंधी मत को वे उपन्यास के पात्रों द्वारा प्रस्तुत करते हैं। अंगद कहता है, ''आज हमारी जाति यदि देवों, आर्यों, राक्षसों, यक्षों आदि से पिछड़ी हुई है तो उसका एकमात्र कारण हममें शिक्षा का अभाव है।''[9] लेखक ने सीता के माध्यम से आधुनिक नारी में आ रही चेतना को परिलक्षित किया है। उपन्यास में सीता नारी चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। वह रामचरित मानस की सीता की भांति कोमल नहीं है अपितु शक्ति सम्पन्न, पुरुष की सत्ता को चुनौती देने वाली वीरांगना है। रावण के सम्मुख सीता की आँखों में दयनीयता नहीं अपितु स्पष्ट फुफकार थी। वस्तुतः लेखक ने सीता के माध्यम से पुरुष सत्ता की पाश्विकता से नारी मुक्ति का आह्वान किया है। योद्धा राम की पत्नी शस्त्रों का प्रशिक्षण प्राप्त कर तेरह वर्षों के वनवास में तपकर भी अपनी मुक्ति के लिए प्रयास न करे। सीता ऐसी दीन हीन तो नहीं थी।[10]

'अभियान' उपन्यास में नरेन्द्र कोहली ने पीड़ित, शोषित, दमित जनता को एक नया साहस व स्फूर्ति प्रदान कर नयी चेतना का संचरण किया है। उपन्यास में राम सुग्रीव को निर्भीकता का पाठ कंठस्थ कराते हुए कहते हैं। ''लड़ना तुमको ही पड़ेगा क्योंकि पीड़ित तुम हो। प्रतिशोध को तुम्हें ही लेना होगा, क्योंकि अपराध प्रति किया गया है।.....गुरु विश्वामित्र ने कहा था- जो पीड़ित लड़ता नहीं है, उसका उद्धार सम्भव नहीं है।''[11]

'युद्ध' उपन्यास में नरेन्द्र कोहली ने उपेक्षित, शोषित साधारण जनता की विजय दिखा सत्ता-धारियों को धराशायी कर मानव मन को आस्था, विश्वास, साहस की संजीवनी प्रदान की है। रावण दमित जनता की शक्ति एवं उनकी चेतना को देखकर हतप्रभ हो जाता है। रावण आत्मचिंतन करते हुए सोचता है, ''रावण ने माना था कि ये वानर पशु के समान जन्में थे, पशु का-सा जीवन जियेंगे और पशुओं की-सी मृत्यु मर जायेंगे.....किन्तु राम की आस्था ने उन्हें विश्व की इतनी बड़ी शक्ति सिद्ध कर दिया था....मात्र मनुष्य शस्त्रों से बड़ा हो गया था।''[12]

संक्षेप में कह सकते हैं कि नरेन्द्र कोहली ने राम के रूप में ऐसे प्रतिनिधि या नेतृत्व की कल्पना की है जो समाज में अनैतिकता, मूल्यहीनता, अनिश्चितता का उन्मूलन कर समाज का मार्ग आलोकित कर सके।

संदर्भ ग्रंथ-

1. रत्नाकर पाण्डेय, हिन्दी साहित्य : सामाजिक चेतना, दिल्लीः पाण्डुलिपि प्रकाशन, 1976, पृ॰ 155-56
2. अम्बिका कुमारी, भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, दिल्लीः सन्तोष प्रकाशन, 1988 पृ॰ 23
3. नरेन्द्र कोहली, अभ्युदय (प्रथम खण्ड) 'दीक्षा', दिल्लीः अभिरुचि प्रकाशन, 2002 पृ॰ 15
4. वहीं, पृ॰ 79
5. नरेन्द्र कोहली, अभ्युदय (प्रथम खण्ड) 'अवसर', दिल्लीः अभिरुचि प्रकाशन, 2002 पृ॰ 196
6. नरेन्द्र कोहली, अभ्युदय (प्रथम खण्ड) 'संघर्ष की ओर', दिल्लीः अभिरुचि प्रकाशन, 2002 पृ॰ 554
7. वही, पृ॰ 558
8. नरेन्द्र कोहली, अभ्युदय (प्रथम खण्ड) 'साक्षात्कार', दिल्लीः अभिरुचि प्रकाशन, 2002 पृ॰ 603
9. नरेन्द्र कोहली, अभ्युदय (खण्ड दो) 'पृष्ठभूमि' नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन 2004 पृ॰ 35
10. वही, 153
11. नरेन्द्र कोहली, अभ्युदय (खण्ड दो) 'अभियान', नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन 2004 पृ॰ 206
12. नरेन्द्र कोहली, अभ्युदय (खण्ड दो) 'यद्ध', नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन 2004 पृ॰ 55

शोधार्थी - हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

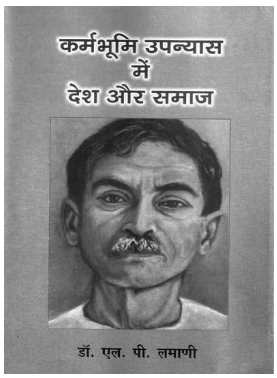

'कर्मभूमि' उपन्यास में देश और समाज

प्रेमचंद के सामाजिक संघर्षों को एक क्रांतिकारी दिशा देती हुई प्रस्तुत रचना 'कर्मभूमि' देश और समाज के लिए एक आदर्शवादी तथा यथार्थवादी प्रेरणा स्रोत के रूप में रची गई अनोखी रचना है। उनका सृजन ग्रामीण और शहरी संस्कृति और आँचलिकता से रंगा हुआ है। लेखक ने यथार्थ और अपने अनुभव के आधार पर सामन्तवाद, पूँजीवाद, नारीवाद, मानवीय अधि ाकार आदि पर अपनी लेखनी चलाई है। ...प्रेमचंद ने अपने लेखन में मजदूरों, किसानों, अछूत वर्ग के शोषण, प्रताड़ना पर गहरा आक्षेप किया है। उन्होंने नारी के विविध रूपों का आकलन किया है। नारी जीवन और उसकी सामाजिक स्थिति में आये परिवर्तन पर विचार प्रस्तुत किया है। नारी जीवन और उससे जुड़ी अनगिनत, असंगतियों, विसंगतियों तथा विडम्बनाओं आदि का अंकन किया है। मूल्य 160

कश्मीर के हिंदी कवि : एक अध्ययन

डॉ. ज़ाहिदा जबीन

भारत देश के अहिंदी क्षेत्रों में से कश्मीर ऐसा अहिंदी क्षेत्र है, जहाँ हिंदी के प्रचार-प्रसार में कोई कमी नहीं देखी गई। हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत भाषा के विद्वान भी अनगिनत है। कालिदास, कल्हण, भामह, वामन, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, कुन्तक, क्षेमेन्द्र जैसे सिद्धहस्त लेखक एवं काव्य शास्त्रीय कश्मीर की ही उपज हैं।

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन ने जब पूरे भारत को प्रभावित किया तो उसके प्रेरणा स्वरूप कई कश्मीरी हिंदी कवियों ने भी भक्तिपूर्ण कविता की।

हिंदी काव्य का पहला स्फुटन 17वीं शती की प्रसिद्ध रहस्यवादी कश्मीरी कवयित्री रूपभवानी के पदों में मिलता है।

रूपभवानी (1625-1720) की आध्यात्मिक वाणी में मानवता के प्रति प्रेम, ज्ञान, भक्ति, सदाचार, गुरु, महत्ता एवं ईश्वर प्रेम के स्वर साफ मिलते है। उदाहरणार्थ-'अपने घर आया आप सांई,/जो कुछ में था सो अब नाहीं।/यह बोध आया गुरु की बड़ाई,/जिन गुरु ने दिया सत्रा का तत्त्व बताई।'

इस भक्त कवयित्री की कविताओं में हिंदी की व्याकरणिक शुद्धता आश्चर्यजनक है।

पदमानन्द (1791-1879) एक अन्य भक्त कवि थे, जिन्होंने 'राधा', 'सुदामा-चरित', 'शिवलग्न' आदि रचनाओं में कई स्थानों पर कश्मीरी भाषा के अतिरिक्त हिंदी में भी अपने इष्टदेव के गीत गाए हैं। इनकी हिंदी कविताओं में ब्रज, खड़ी-बोली, पंजाबी, कश्मीरी भाषाओं का विचित्र मिश्रण है।

19वीं शताब्दी में लक्ष्मण-जू-बुलबुल (1859-1946), श्री लालचंद जाडू, श्री कृष्ण राजदान (1850-1925), ठाकुर जी मनवटी, हलधर जू कोकरू, पं. विष्णु कौल जैसे कई कवि रहे हैं, जिन्होंने कश्मीरी के साथ-साथ हिंदी में कविताऐं लिखीं, जो भक्ति, धर्म और नीति की भावनाओं से युक्त हैं। हालांकि इन कवियों की हिंदी कविताओं में प्रयुक्त हिंदी अटपटी है।

पंडित ज़िंदा कौल, 'मास्टर जी' (1880-1966) ने सन् 1941 में 'पत्रपुष्प' नामक पुस्तक लिखी जिसमें पांच हिंदी कविताऐं हैं, जो मानव मूल्यों पर आधारित है।

पृथ्वीनाथ मधूप (1934) का प्रथम कविता-संग्रह 'वे मुखर क्षण' (1962) में प्रकाशित हुआ, इनके अन्य काव्य संकलन हैं, 'खोया चेहरा', (1972), 'खुली आंख की दास्तां' (1981) 'बाबुल के साए में मोगरा' (1992) 'मोहताज नहीं नाम की व्यथा' (2002)। इन्हें जम्मू-कश्मीर की 'कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी : परमानन्द' इनकी अन्य पुस्तकें है। मधूप जी की कविताऐं सरसता एवं भाव-भीनी भावनाओं से पूर्ण हैं।

उदाहरण-'रूप का आसव जमीं से दो छगों ने पी लिया,/भर गया मीठी कसक कितनी उमंगों से जिया,/बेकरारी से हमारी आप को क्या मिल गया,/अर्थ बोझिल आप की नज़रों से कुछ कह लिया।'' (वितस्ता, 1978 हिंदी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय)

मोहन निराश (1934) कश्मीर के अन्य प्रतिष्ठित कवि हैं। इनके पांच कविता संग्रह छप चुके हैं, इनकी पहली कविता, 'शान्ति विहंग' (1957) नया समाज नामक पत्रिका में कोलकता में छपी थी। इनकी कविताओं में व्यक्तिगत पीड़ा, जनहित भावना, आक्रोश, विरोध, अत्याचार-मारामारी-घूसखोरी के प्रति विद्रोह साफ-साफ दिखाई देता है। इनके प्रथम कविता-संग्रह, 'कृष्ण मेरा पर्याय है' की 35 कविताओं में छायावाद तथा उत्तरछायावादी प्रवृत्तियों को सकारात्मक रूप से देखा जा सकता है।

'शून्यकाल', 'खानाबदोश' इनके अन्य काव्य-संग्रह है। मोहन निराश की लंबी कविताओं में तन को उत्तेजित करने की शक्ति है। इनकी कविताओं में तनाव की स्थिति स्पष्ट मिलती है-तुम मुझ से मांगते हो इतिहास/मेरे पास बाकी बचा है केवल एक नारा/मैं वही दे सकता हूँ।/और नारा है,/तुम्हें इन्कार है, जिसे इतिहास मानने से/उसी को इतिहास मानो....'

शशिशेखर तोषखानी (1935) ने अपने कविता-संग्रह 'थोड़ा-सा आकाश' के आत्मकथ्य में स्वीकार किया है कि वह अज्ञेय जी से प्रभावित हैं। इन्होंने कश्मीरी कवयित्री लल्लेश्वरी के वाखों का हिंदी भावानुवाद किया है। इनका 'कहा था ऋषि ने' नामक ग्रन्थ सूफी संत शेखनुरूद्दीन वली (कश्मीरी) के पद्य का हिंदी अनुवाद है। इनकी संवदेनशील कविता में असंतोष, आक्रोश, कुण्ठा और बिखराव तथा निराशा के स्वर अधिक प्रखर हुए हैं। इनकी कविताओं में उदासियां, दर्द की कसक, आधुनिक जीवन का बिखराव, संशय व्यक्तिगत अनुभूतियों सहित चित्रित हुआ है। जैसे 'शत्रु से बातचीत' कविता में कवि कहते हैं-'दर्द करते दांत की तरह/तुम मेरे हर शब्द के/मुंह में मौजूद हो ...'/किस अदृश्य नाल से तुम/मेरी पीड़ा के नाभिस्थल से जुड़े हो?

शशिशेखर जी की आरम्भिक कविताओं में मध्यवर्गीय विद्रोह और आक्रोश मिलता है-'मुट्ठियों में गगन का विस्तार/या फिर एक जलता सत्य तर्कातीत/हड़िया चटखा न डालें/मुठ्ठियों में उबलता आवेश।'

अनास्था और संशय की बलवती स्थिति को प्रकट करती कविताओं के अतिरिक्त आत्मविश्वास और देखने योग्य हैं। कवि को विश्वास है कि अंधकार हटेगा, जैसे-'फैलेगा-फैलेगा हमारा मौन/समुद्र के पानी में नमक की तरह/समुंद्र के पानी में नमक की तरह/नसों में खून से दौड़ता हुआ/पहुंचेगा चिलों की धड़कनों के बहुत निकट।

डॉ. रतन लाल शान्त (1938) एक विचारक, आलोचक, नाटककार, कहानीकार, अनुवादक के अतिरिक्त एक अच्छे हिंदी कवि भी हैं। कवि के रूप में यह धर्मवीर भारती एवं जगदीश गुप्त से प्रभावित हैं। सन् 1953 से ही इनकी कविताऐं विभिन्न पत्रिकाओं में छपने लगीं। 'खोटी किरणें' (1965) इनका प्रथम हिंदी कविता-संग्रह है। जिसमें कवि स्पष्ट कहते हैं कि यह आवश्यक नहीं है कि कश्मीर का कवि केवल प्राकृतिक सौन्दर्य का ही चित्रण करे। वादियों में गहरे उतर कर वहां रहने वाले लोगों की समस्याओं को जानना भी आवश्यक है। जैसे शांत जी 'खोटी किरणें' काव्य-संग्रह में स्पष्ट कहते हैं, ''....इस सौन्दर्य को केवल पहाड़ों ने न देखिए, घाटी में उतर कर इसे लोगों की वृत्ति में ढूंढ़िए तो जान पाऐंगें कि अब केवल एक आवरण, एक लबादा और एक मुखौटा रह चुका है।'' 'सूरज मेरे यहां कभी नहीं गुज़रता'/अपनी अंधी कोठरी के झरोखों से/मैंने बाहर झांक कर/उषा के फूल सम्भालती मालिन से/और तारों की बन्द होती दुकानों से/जितनी भी किरणें खरीदी थी/वे सब खोटी निकलीं।' (खोटी-किरणें)

कवि शान्त जी मानव-मन की गहराइयों तक जाना बखूबी जानते हैं। 'कविता कोशिश बनाम पिकासो प्रयास' में कवि मनुष्य को परखने का प्रयत्न करते हुए लिखते हैं-कविता की

कोशिश में/यह क्या आज बन गया/आदमी नहीं/आदमी का कोलाज बन गया।'

शांत जी की आरम्भिक कविताओं में छायावादी संस्कार मिलते हैं, छीटी-सी बात को महसूस कर, उसकी गहराई में जाकर उसको कविता के रूप में व्यक्त करना ही शांत जी की लेखन-शक्ति की विशेषता है। कश्मीर से दूर रहकर भी उन्हें कश्मीर के लोगों का दर्द सताता है। इनकी कविताओं में स्वास्थिति की गूंज मिलती है। क्षोभ और व्यंग्यपूर्ण आक्रोश के साथ कवि ने शासन से निराश होकर भी कविताऐं लिखीं है। परिवेश की सच्चाई और सजीवता कवि की 'सुबहः बर्फवाली' कविता में देखी जा सकती है-'कल की बच्ची बर्फ/आज मुझ से भी बड़ी हो/मेरी ही उंगली पकड़ टहनी पर/मुझे फुदकाओं,/मुझ को भी छतों पर फैला जावो,/तेरे नभ आगन में/मैं भी घुटनों चलूंगा।'

डॉ. सोमनाथ कौल (1942) की कविताओं में आधुनिक युगबोध और नागरिकता का बोध यांत्रिक प्रभाव के साथ उभरा है। 'पंगडंडी का पत्थर' कविता जीवन की असफलता और कुंठाओं की अभिव्यक्ति करती है। 'बैसाखियां' अस्तित्ववादी चिंतन पर आधारित कविता है, इसमें अकेलेपन की अनुभूति, पीड़ा-बोध तथा यांत्रिकता के दबाव में मनुष्य के विवश रूप की भावाभिव्यक्ति हुई है। 'रद्दी की टोकरी' कविता अतार्किकता को प्रश्रय देती है, जिसमें बौद्धिकता के प्रति विरोध उभर कर आया है।

'रक्त के फूल' कविता में उन्होंने शोषक-वर्ग के सौन्दर्य बोध पर व्यंग्य करते हुए शोषित वर्ग की विसंगतियों का अहसास कराया है, इस कविता में यह व्यंग्य करते सृजन के साथ जुड़ा हुआ है और शिल्प की दृष्टि से जो बिम्ब निर्मित हुए हैं-जैसे-'केसर की बहार आई/और खेतों में/आज फिर/श्रवजीवियों का/लाल रक्त अंकुरित हुआ/.....इसे प्राकृतिक/'सीनरी'/समझकर भारी जेब और/मोटे पेट वाले/ सभ्य संस्कृत लोग/ इसका मज़ा लेने/महकती चांदनी में आते हैं/.....उधर वे/जिन्हें/पिछले रक्त का मूल्य/ मिला हो या न मिला हो/इसी चिंता में हैं/कि ताज़ा नया रक्त बोने का समय/फिर आने वाला है।

श्याम सौंधी (1944) की कविताओं का शब्द विधान बहुत प्रभावक है। तथ्य की सहज-सी व्यंजना करती इनकी कविताऐं आत्मव्यंजक हैं। 'मर्म', 'आह' कविताऐं मानव के कोमल मन में छिपे सूक्ष्म दर्द से बोझिल एक हल्की-सी सांस है। हंसी की चादर में छिपे हज़ारों दर्द है, 'जलता अंधेरा' में मानसिक बिम्ब चेतना प्रवाही शैली में उभरे हैं। मानों अपनी विगत् दुनिया में रहने की आदी कवयित्री वर्तमान में गहराई के साथ स्वयं को जानने का प्रयत्न कर रही हों। 'आंसू' कविता मानों आह की अनुगामी हो, जिसमें टूटे व्यक्तित्व और बंद कमरे में सिर पटकने का दुख स्पष्ट दिखता है। 'भूल' कविता आत्मा की व्यथा व्यक्त करता गद्य गीत है। उपचेतना की गुफा में आंसुओं की तिजारत और खुद अपने कंधे पर अपनी लाश के बिम्ब दृष्टि में चमक उठते हैं-'मेरी खुशी आंसुओं की तिजारत है,/मेरी ज़िंदगी मौत की इबादत है।/मैंने ज़िंदगी के रिश्तों का कर्ज़/अपनी रूह को जलाकर भरा है। (भूल)

महाराज कृष्ण 'भरत' ने 1995 में 'फिरन में छिपाए तिरंगा' प्रकाशित किया। 'सूर्य मार्तण्ड-पौराणिक संदर्भ' 2005 में प्रकाशन में आया। इसके अतिरिक्त 'नींव तुझे नमन' काव्य संकलन 2006 की उपज है। इनकी कविताओं में विस्थापन की पीड़ा, व्यथा, आक्रोश, संघर्ष, अधिकारों का हनन का दुख साफ दिखाई देता है। जैसे-'यह समय/पीड़ाओं का बारूद के कणों में बदलने का है/सपने जगाने का है/यही समय है/अपने भीतर झांकने का/मन को मथने का/सोए रक्त को/फुंकारने का/लहू को पहचानने का....'

कश्मीर से विस्थापित पंडितों का जम्मू के शिविर में एक कमरे के टैंट में रह रहे परिवार का दुख और कष्ट 'भरत' जी की 'रात' कविता में देखा जा सकता है-

'कोने में दुबका/किताब लिए/ है बेटा/पास में अधेड़ पिता/मेहमान को/सुना रहा है/ उस

रात की व्यथा/जवान बेटी छटपटा रही है/मछली की तरह कि हो उसका भी/एक कोना/मां चूल्हे में तपा रही है आग/ कि/मेहमान रात होते/कहां सोएगा?''

डॉ. सन्तोष जारू (1944) की 'बिखराव' कविता मानव के बिखरे सपनों पर आधारित है, जैसे-.....और 'मैं' बेबस लाचार,/अपनी तमन्नाओं का दम तोड़ना देखती रहती हूँ/और देख कर भी दम, साधकर/जिया रहती हूँ...'

वीणा चन्ना (1946) भी 'बताओ कोई' कविता में इसी तथ्य को प्रस्तुत करती हैं कि इस दर्द भरे जीवन में आशा का दामन पकड़े रहना अनिवार्य है, जैसे-'मानों तो अंधेरा है/नहीं तो उजाला है/मानों तो साँप, नहीं तो माला है/देखने वाली नज़र.....'

नीना कौल (1946) भी 'रंगीन दायरे' कविता में दर्द, कसक की अभिव्यक्ति करती हैं, जैसे-'....दर्दो के रंगीन दायरों की/यह सांपिन-सी कसक/मेरे लिए अनजान हैं। क्योंकि/....मैं जब-जब बढ़ती हूँ/तो फिसल कर/....दर्द के रंगीन दायरों में बदल कर/ मुझे, चारों ओर से कस लेते हैं।..'

कौशल्या चल्लू (1950) जड़ हो रहे मानव मन की अभिव्यक्ति 'रेगिस्तानी चेतना' कविता में करती हैं-'कल रात अपनी/चेतना का/ 'लॉक आउट' करके हम बाहर निकले/'

डॉ. विजयमोहिनी कौल (1948) की कविताओं में आंतरिक टूटन और बिखराब है जो मासूमियत के साथ दर्द के रूप में ढल गया है- 'आहटें' और 'एक अनुदृष्टि' कविताऐं भी सुंदर शब्द-विधान का प्रदर्शन करती है-'मैं अश्रुबिन्दु, क्यों ढुलक-ढुलक/मोती बनने की आस करूँ/जो हो न सका, वो चाह लिये/क्यों अपने से परिहास करूँ,/बस, घुट-घुट कर रह जाते हैं/इस शांत भील की लहरों में.../जब स्वप्न दीप बुझ जाते हैं....'

सरला कौल (1950) की कविता, 'कैक्टस' व्यंग्य-प्रधान आधुनिक संवेदना पर आधारित है, -जैसे- 'कैसे सुंदरता के साथ सजाते हैं। कैक्टस के पौधों को ड्राइंग रूमों में-ये सभ्य लोग/' 'आधुनिक उपचार' का शिल्प भी व्यंग्यात्मक है। जड़ता से भरे बौद्धिक युग पर ही व्यंग्य है। कविता में कर्वायित्री ने ऑपरेशन थियेटर के बिम्ब चित्रित किए हैं।

वीणा कुमारी की कविताऐं नई कविता की संवेदना को लेकर लिखी गई हैं। 'एक तल्लीन स्थिति' कविता में उपचेतना की दशा उभर आती है जहां कवयित्री को संपूर्ण अस्तित्व जड़ी भूत प्रतीत होता है। उसके पास दर्द है, दर्द का निदान नहीं है, 'द्वन्द्व' कविता भावप्रवणता और बौद्धिकता का ही द्वन्द्व है, शिल्प की दृष्टि से यहां कुछ बिम्बों के प्रयोग बहुत नवीन हैं। उदाहरण-'नीरव संध्या की/थकी हुई बाहों में/मेरी बोझिल गर्दन/झुक जाती है/जब/एक मूक आह्वान/सब धनीभूत यादों को/एक मूक आह्वान/सब धनीभूत यादों को/उधेड़ लाता हैं/....' (एक तल्लीन स्थिति)

महाराज कृष्ण शाह (1952) की कविता 'मकबरा' में कवि अतीत के गौरव का गान कर रहे हैं। 'भटकाव' और 'पुल' कविताओं में भी वे मानव मन के भटकाव और अतीत को वर्तमान से जोड़ने की छटपटाहट को व्यक्त कर रहे हैं-'मकबरा' की पंक्तियां देखें,-'इस जीवन की/सारी खुशियां और ग़म/ गिरवीं हैं उस अतीत के पास/जो बहुत ही अपना है...।'

अशोक कुमार तिक्कू (1954) भी अपनी कविता, 'संघर्ष की कमान से छूटे' में सपनों और आशा को लेकर चलने की बात करते हैं। 'मैं' कविता में कवि ने मानों आत्माभिव्यक्ति की है, जैसे-'कहां आ गया हूँ-/इस देश की भाषा/वातावरण मेरे इर्द-गिर्द का/परंपराऐं, भावनाऐं/हो रहा हूं/सबसे विच्छिदित।'

महाराज कृष्ण संतोषी (1954) कश्मीरवादी के वर्तमान युग के जाने-माने कवियों में गिने जाते हैं। इनके कई कविता-संग्रह हैं, जैसे-'इस बार शायद' (1980) 'बर्फ पर नंगे पांव'

(1992-58 कविताऐं), 'वितस्ता का तीसरा किनारा' (2005) इनकी कविता 'हर टुकड़े पर मेरे ही हस्ताक्षर' में टूटन के एहसास को गहराई से अनुभव किया गया है। 'मेरे गांव की सड़क' में नागरिक संवेदना की चित्रित किया गया है। 'चेतन' और 'कैमरा' कविताऐं भी मानव-मन की भावनाओं पर आधारित हैं।

सन् 1990 के बाद लिखी इनकी कविताओं में आक्रोश, विरोध, विस्थापन की पीड़ा को साफ़ देखा जा सकता है। उन्हें घर की याद के अतिरिक्त संवेदनहीन होते लोग भी कष्ट देते हैं। उन्हें लगता है कि लोगों में अब बारीक तथा सूक्ष्म अनुभूतियों को समझने की क्षमता नहीं रही है। 'स्वतंत्र जंगल' और 'ताबूत में आईना' जैसी कविताओं में गंभीर तथा गहन भावों के दर्शन होते है।

एक लघु कविता है-'जलो!/पुकार है इधर उधर/हर कहीं/आग हाकिम है/सारे जहां का/और यह घोषणा सुन लो/छाया ठंडक की वांछना/बागवत है।' (इस बार शायद)

'संताषी' जी की कविता 'निर्वासन में सेब की याद' की पंक्तियां देखें-'कैसा अद्‌भुत है/मैंने दर्पण में जो देखा/मुझे चेहरा नहीं/दिखाई दिया अपना गांव/दौड़ आई एक नदी/गले मिली मुझसे/बहुत रोई....'

इसे केवल कवि की कल्पना नहीं कहा जा सकता, गांव, सेब, धूप, बगीचे, नदी जैसे प्रतीकों तथा 'दौड़ती नदी', 'लंगडाता पेड़' जैसी उपमाओं में बुनी गई यह कविता वस्तुतः अपनी जड़ों से उखड़ने या पहचान खो देने का अनूठा दर्द है। दर्पण झूठ नहीं बोलता किंतु सत्य देखने की किसी को फुर्सत कहां? कश्मीर में आतंक से दुखी कवि का दुख स्पष्ट 'आंधियां', 'घर की पुकार' जैसी कविताओं में देखा जा सकता है। 'शोक गीत' कविता में कवि प्रिय श्रीनगर के बारे में कहते हैं-'श्रीनगर अब रहा नहीं/श्रीनगर/वितस्ता ढो रही है मैल/धड़ फिर लाशें....'

मुहम्मद परवेज़ (1956) की कविता 'मुस्कान- वृत्त के पीछे' हंसते चेहरों और मुस्कराते होंठों के पीछे छिपे दर्द का पर्दा फाश करती हैं। 'अनुभूति से' कविता में उन्होंने कल्पना जगत में पल रही इच्छाओं और कभी न पूर्ण होने वाली आशाओं को टटोला है, जैसे- '....इन सपनों के रिश्ते/यह आस्था की रश्मियां/रेत में धूप की शरारत है। चमकता पिस हुआ अभ्रक/ और कुछ नहीं/ आस्था की फटी भोली से/ मुठ्ठी की रेत की तरह/न जाने कब की फिसल गई है.....'

उपेन्द्र रैणा (1956) की कविताऐं अकविता की श्रेणी में रखी जा सकती हैं। 'पर्यायवाची' कविता व्यक्तित्व का द्वित्व प्रस्तुत करती है। जब द्वित्व होता है तो मानसिकता तृतीय आयामी हो जाती है। इस कविता के शिल्प का व्यंग्यात्मक रूप रोचक है। '?' कविता में बिखरे हुए व्यक्तित्व की अनुभूति है। आज के युग में व्यक्ति के इतिहास की यही परिणति है। 'देवता' कविता में भी व्यंग्य मिलता है। जैसे-'आकाशहीन लोगों!/जाग रहे थे सभी उस रात,/जब मैं/स्वप्न में भगा के ले जा रहा था,/आकाश को...' (देवता)

इसका एक काव्य-संग्रह, 'चीख की एक भाषा' शीर्षक से छपा है। प्रकृति के तत्त्वों का उपेन्द्र जी ने खुलकर प्रयोग किया है। हिमपात, झीलें, चश्में, पहाड़ आदि इनकी कविताओं को सजीव बनाते हैं। जैसे-'तुम जब हंसते हो/मेरा चिनार कटने लगता है/काश! मैं/चिनार नहीं/एक मरूस्थल होता।'

सड़ी-गली, बासी होती रूढ़ियों और परंपराओं के यह विरोधी रहे हैं। युवावस्था में लिखी कविता 'ईश्वर! तुम्हारे नाम' में कवि कहते हैं- इतिहास के पृष्ठ/क्योंकि देखा था मुंह/ हमने आज/उस ईश्वर का/ जिसके मुखौटे का रंग/बदलता है.....' (वितस्ता, 1978)

अग्निशेखर जी का पूरा नाम कुलदीप सुम्बली है, इनकी जन्म तिथि 1956 है। 'किसी भी समय', 'मुझसे छीन ली गई मेरी नदी' (1996) तथा 'कालवृक्ष की छाया में' (2002) इनके कविता-संग्रह है। इनकी अधिकांश कविताओं में आतंकवाद, विस्थापन, अन्तराष्ट्रीय समस्याओं के बिम्ब स्पष्ट दिखाई पडते हैं।

इनकी कविताओं के शीर्षक भी कश्मीरी पृष्ठभूमि पर आधारित होते है। जैसे- 'कांगड़ी', 'बर्फ', 'कोयला', 'हांगुल' आदि। घर की याद, मातृभूमि को फिर से स्पर्श करने की तड़प इनकी कविता, 'तड़प' में दिखती है, जैसे-'अरे मेरा करो अपहरण,/ले जाओ मुझे अपने यातना शिविर में,/कुछ नहीं कहूंगा मैं/मैं तरस के स्पर्श के लिए।..'

'अग्निशेखर' जी सारे संसार को 'न्यूयार्क' कविता में कांच के पेपरवेट से मापते हुए कहते हैं-'मेरे सामने इस ड्राइंगरूम में/आदमी के कद से बहुत ऊंचा है कांच का एक/पेपरवेट/सलीके से व्यापी हुई खामोशी/काफी संभ्रान्त है कांच के संसार में...'

पौराणिक मिथक का प्रयोग करके 'बेचारे पांडव, : बेचारी द्रौपदी' कविता में 'अग्निशेखर' जी ने राजनीतिक परिस्थिति पर व्यंग्य किया है। 'समुद्र जो फैला है' कविता अन्तविरोध पर आधारित कविता है। महानगरी का बोध और शैशव के मस्तमलंग रूप के बीच यही अंतर्विरोध कवि को डरा रहा है। कवि ने फैंटेसी का अच्छा प्रयोग किया है। 'रात' कविता में आस्था और अनास्था के खण्ड-चित्र दर्शाये गए हैं। 'भोपाल 84' नाम कविता की पंक्तियां देखें- 'सांय/ सेंध लगाने निकले/ चोर की तरह/चलकर/हवा वृक्ष के तने से लिपट कर/गाढ़ गया उसमें दांत...'

क्षमा कौल (1956) एक सशक्त महिला रचनाकार हैं। नारी होने के नाते उनकी कविताओं में नारी हृदय की कोमलता और छटपटाहट देखने को मिलती है। 'तथाकथित ईश्वर' कविता में विश्वास को टूटते और मोहभंग होते दिखाई पड़ता है। 'एक अनुभूति' में भी लोगों के लुप्त हो रहे चैन और संतोष का चित्रण मिलता है। जैसे-'...आधुनिक फैशन में-हृदय यह उत्तरीय,/पहने तो-/जंचता नहीं'/और-/आज के स्वादों में,/विनय यह सिद्ध फल-/खाए तो रुचता नहीं।..'

कवयित्री नारी की हिमायती हैं। वे नारी को जागृत देखना चाहती है। कुरीतियों को नारी पर लागाए आक्षेप मानती है। जैसे इन व्यंग्यात्मक पंक्तियों में क्षमा जी कहती हैं-'थक कर पांव पसारना,/कंजारी होना होता है/कंजरी होना/लड़की नहीं होना होता है।'

नारी मन की छटपटाहट, बेड़ियों में बंधे जीवन से मुक्ति की कामना क्षमा जी की कविताओं में मिलती है-'.....जब वह गया/गई मेरी चुगों की/पराधीनता/गया वह/मेरी रजोमुक्ति की तरह'

कश्मीर से विस्थापित होने की त्रासदी को झेलने के उपरान्त सन् 1990 के उपरान्त रची क्षमा जी की कविताओं में विस्थापन की पीड़ा व्यक्त हुई है। घर छूटने का दुख उनकी कविताओं में स्पष्ट छलकता है-'मेरे पास है बीजों की गठरी/टिकाने को पीठ अब/रखी है बांध/मेरे सामने धूम रहा है/ब्रह्मांड/घूमता घूमता आएगा घर/गठरी खोलूंगी/कभी न बांधूगी।'

'तुम', 'ईश्वर', 'धूप की गली', 'जूताखोर', 'बुब्बन के नाम', 'दिन', 'मां' आदि इनकी अन्य कविताओं के शीर्षक हैं।

निदा नवाज़ कश्मीर घाटी के अन्य कवि हैं, जो कश्मीर के दुख-दर्द, आतंक, निर्धनता, विस्थापन के कष्ट को व्यक्त करने में सफल हुए है। तूफान से पलायन कर तूफान की अभिव्यक्ति करने वाले अवश्य बहुत हैं। किंतु तूफान में रहकर, उसे झेल कर, भोग कर, उसके थमने

की आशा करने वाले बहुत कम है। निंदा नवाज़ भी उन में से एक कवि हैं। निंदा नवाज़ के निडर लेखन की पुष्टि करते हुए प्रो. ओमप्रकाश गुप्त कहते है-''निदा नवाज़ की कविताऐं एक विस्थापित व्यक्ति के ऐसे उद्‌गार नहीं हैं, जो अपने घर से बिछुड़े हुए घर को बाहर खड़ा देख रहा है। कवि अपने-अपको युद्ध और मौत के ऐन बीच पाता है।''

निदा नवाज़ की पहली कविता 'दिल की लहरें' (1983) है। जो इनके प्रथम काव्य-संकलन 'अक्षर-अक्षर रक्त भरा' में भी संकलित है। निःसंदेह संग्रह का मुख्य विषय कश्मीर में आतंक, दुख-दर्द, खौफनाक वर्तमान और अंधकारमय भविष्य है, जैसे-'जीवन मेरी कविताओं की/हर उस सिमटी हुई पंक्ति/में से झांकता है/जो गोलियों की वर्षा में बैठे/डर और खौफ से/बीच में ही काट दी जाती है।'

'कटीली झाड़ियां' कविता में निदा नवाज़ अपनी संस्कृति और सभ्यता का गुणगान करते हैं। लल्लेश्वरी और नुन्दऋषि जैसे संतों की धरती पर जन्म लेने का गौरव व्यक्त करते है और वादी में शान्ति की आशा करते है। 'मानवता' शब्द मानों कवि का प्रिय शब्द हो। उनकी अधिकांश कविताओं में मानवता शब्द का बेबाक प्रयोग हुआ है। वे मानवता के प्रसार-प्रचार को ही विश्व शान्ति का बीज मानते है। शृंगार, निर्धनता जैसे विषयों पर भी उन्होंने लेखनी चलाई है। विश्व के अन्य देशों का कष्ट, आतंक, फसाद भी उनकी कविताओं का विषय है। विषय चाहे कुछ भी हो किंतु उनकी कविताओं का एक-एक शब्द हृदयभेदक है। जैसे-'हमारे अपमानित इतिहास के/हर काले पन्ने का/अक्षर-अक्षर रक्त भरा है।'

सतीश विमल का प्रथम काव्य-संग्रह है-'विनाश का विजेता' (1992)। संग्रह के शीर्षक पर आधारित कविता की पंक्तियां हैं-'बेमानी रंगों के बिखराव को/मैंने दे दिया 'विनाश' का नाम/और प्रतियोगिता के परिणाम में/मेरा पहला नाम था.....'

'आज गोली चली', 'गुहार', 'रंगसाज' कविताओं में कश्मीर के आतंक हिंसा की अभिव्यक्ति हुई है। 'रिक्तता', 'मोर और मदारी' कविताओं में भूख और निर्धनता के चित्र मिलते हैं। 'अलाव', 'छाता', मधुर परिहास और व्यंग्य की छाया से भरी कविताऐं हैं। 'दर्द' कविता में कवि कहते हैं-'एक टूटती हुई/ टहनी का दर्द भांपते-भांपते/ मैं वृक्ष हो गया/जग कल्याण का कोई मंत्र/घुस आया है मेरे भीतर/दर्द निरंतर/तुमने कभी देखा है क्या/वे कुर्सियों पर/तने हुए लोगों।'

इनकी कविताओं में भी आशा के दीप दिखाई पड़ते हैं। जैसे 'फसल' कविता में कवि कहते हैं-'दृष्टि के खलिहानों में से/आशाओं की झाड़ियां/और अनुभव के कांटे/उखाड़ू फेकने होंगें/ तभी हम/अपने आगे/सूर्य की लहलहाती फसल को/पा सकेंगें।'

निष्कर्ष यही है कि कश्मीर घाटी में कई कवि हैं जो कविता कर्म में जुड़े हुए हैं। कई उभरते हुए कवि हैं जिनकी छुटपुट कविताऐं छपी हैं किंतु संग्रह रूप में प्रकाशित नहीं हो पाई हैं। कई महारथी भी है जिनके संग्रह काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रसिद्ध कथा लेखिका चन्द्रकान्ता जी भी कश्मीर धरती की बेटी हैं उनके काव्य संग्रह हैं-'यहीं कहीं आसपास' एवं 'चुपचाप गुज़रते हुए'। इसके अतिरिक्त कई कवि हैं जैसे- जानकी नाथ कौल ('विक्षिप्त वीणा' 1980), प्यारे लाल हताश ('खोए हुए क्षण' एवं पीड़ा अस्तित्व की') आदि।

कश्मीर के हिंदी कवियों की भाषा-शैली सरल, स्पष्ट और प्रवाहपूर्ण है। भाषा में कहीं भी क्लिष्टता, दुरूहता या कृत्रिमता नहीं मिलती। इतिहास की चोटों को सहन करते हुए कवि अपने स्वभाव से विवश हो कर लिख रहा है। अतः यह अतिश्योक्ति न होगी कि कश्मीर में हिंदी कविता अपने पूर्ण प्रवाह के साथ वह रही है।

वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर कश्मीर-6

समकालीन हिन्दी उपन्यास में स्त्री–विमर्श

प्रा. नरसिंह द रानसरजे

इस भौगोलीकरण तथा उपनिवेश के युग में स्त्री-विमर्श, बेहद ज्वलंत विषय है, जिसे समझे बिना वर्तमान सन्दर्भ में पितृसत्तात्मक व्यवस्था की पड़ताल नहीं की जा सकती। यह बौद्धिकता का प्रतिफलन नहीं बल्कि सक्रिय आन्दोलन का विषय है। इसका आधार समतावादी विचारधारा है।

बीसवीं शताब्दी के मुक्त संघर्षों में स्त्री का मुक्ति संघर्ष शायद सबसे अधिक मूलगामी और सार्वभौमिक रहा है। सबसे अधिक अहिंसक, रक्तहीन और सत्यग्रही भी। स्त्री विमर्श की शुरुआत सन् 1781 में फ्रांससी क्रान्ति, जिसने स्वतंत्रता समानता और बंधुत्व की भावना को मानवीय अधिकारों की गरिमा प्रदान की तथा राजतंत्र और साम्राज्यवाद को अपेक्ष लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था के स्वस्थ और अभिशप्त रूप को प्रतिष्ठित किया। भारत में राजा राममोहन राय का सन् 1818 में सती प्रथा का जमकर विरोध, जिसके फलस्वरूप लार्ड विलियम को सन् 1829 में सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित करना पड़ा। 1867 ई. में प्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक और चिन्तक जॉन स्टुअर्ड मिल द्वारा ब्रिटिश पार्लियामेंट में स्त्री के व्यस्क मताधिकार के लिए प्रस्ताव रखा गया, जिसके कारण स्त्री-पुरुष के बीच अनिवार्य कानूनी और संवैधानिक समानता मिली। स्त्री-विमर्श के विभिन्न सरोकारों में प्रमुख है पितृसत्तात्मक व्यवस्था का पुनर्निरीक्षण, देह-मुक्ति के नारे का विश्लेषण, सहअस्तित्वपरक समाज तथा विश्वभगिनीवाद की स्थापना। समाज के माध्यम से रोजाना में और रचना के माध्यम से समाज में ये सरोकार विभिन्न कोणों से प्रतिबिम्बित हुए है। यह ठीक है कि समकालीन कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श का सैद्धान्तिक रूप पूरी तरह से उभर कर सामने आता है।

पिछले दो दशकों में प्रकाशित उपन्यास साहित्य में हमारा साक्षात्कार ऐसी स्त्री-पात्रों से होता है, जो अपने सामने उपस्थित चुनैतिकनी (इदनमम्) सारंग (चाक), शीलो (झूलानट) अल्मा (अल्मा कबूतरी), चित्रा मुद्गल की नमिता (आवां), मृदुला गर्ग की स्मिता (कठगुलाब) ममता कालिया की कविता (एक पत्नी के नीट्स) आदि ऐसे स्त्री पात्र है, जो अपनी अस्मिता व अधिकारों के प्रति सजग है। वे न केवल सामंती परिवेश, रूढ़ परम्पराओं को तोड़ता है, बल्कि मनुष्य रूप में अपने अस्तित्व की स्थापना करने के लिए भी प्रतिबद्ध है।

समकालीन उपन्यास की नायिकाएं मात्र साहित्यिक पात्र नहीं है, बल्कि वे सम्पूर्ण स्त्री जाति का प्रतिनिधित्व करती है। छिन्नमस्ता उपन्यास की प्रिया का जीवन आधुनिक नारी के संकल्प का दस्तावेज है। इदन्नमम की मंदा जड़ रूढ़ियों का विरोध करती हुए अपना स्वतन्त्र आधार बनाती है तथा समग्र समाज को साथ लेकर चलने में विश्वास करती है।

पुरुष वर्चस्व को ललकारने-नकारने वाली महिलाएं समाज में किसी मुकाम तक नहीं पहुँच पायी, स्वयं टूटकर बिखरती रही है, लेकिन उनका यह टूटना अकारण नहीं वरन् अमीबा की तरह कई-कई हिस्सों में अभिव्यक्त होकर अपनी चेतना को विकसित प्रसारित करना है।

शिक्षा के प्रसार के कारण स्त्रियों की स्थिति में अभूतपूर्व सुधार हुआ है। उसने पितृसत्तात्मक व्यवस्था के स्वरूप को समझा है और इस व्यवस्था के नियमों में अपेक्षित परिवर्तन करके स्वयं को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किया है। छिन्नमस्ता की प्रिया एक पत्नी के नोट्स की कविता, कथा सतीसर की कात्या आदि ऐसी पात्राएं है जो शिक्षा को आधार बनकर अपने पैरों पर खड़ी होती है तथा चाक उपन्यास की सारंग मनुष्य होने की प्रतीति पाने हेतु राजनीति में पैर जमाती है। कथा सतीसर उपन्यास के केशव का कहना ठीक है कि लड़कियों ने पढ़-लिखकर अपने अधिकारों को समझा है। शिक्षित होने के कारण ही स्त्री ने सुरक्षा की अपेक्षा स्वतन्त्रता को प्राथमिकता दी है। समकालीन लेखिकाओं ने अपने लेखन द्वारा स्पष्ट किया है कि स्त्रियां मात्र वस्तु या कठपुतलियां नहीं है, वे भी हाड़-मास की असली औरत हैं, जिनकी अपनी इच्छाएं हो सकती है। इन लेखिकाओं ने अपने उपन्यास साहित्य में स्त्री को नहीं कुलटा रूप में। उनका सारा संघर्ष स्त्री को मनुष्य के रूप में स्वीकारने का रहा है।

लेखिकाओं ने स्पष्ट किया है कि भिन्न-भिन्न श्रेणी, वर्ग, जाति, नस्ल की होते हुए भी जेंडर के आधार पर सारी दुनिया में स्त्री का संघर्ष एक-सा है। उनकी भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक, भाषिक और अस्मिता संबंधी समस्याएं भी प्रथा-एक-सी है, जो उन्हें एक दूसरे का विरोधी न बनाकर एक दूसरे के और अधिक निकट ले आती है। इन उपन्यासों में विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से इस तथ्य को स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

स्त्रीवादी उपन्यासकारों ने न केवल स्त्री के शोषण, उसकी नियति को अपने उपन्यास-साहित्य में चित्रित किया है बल्कि साथ नहीं पितृसत्तात्मक व्यवस्था से जूझने के लिए पर्याप्त साहस भी भरा है। इनके उपन्यास समय के जीवन के कटु यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है। कही -कही तो स्त्री भीतरी-दबावों और तनावों को सहती हुई टूटने के कगार तक पहुँच जाती है, किन्तु इनकी जिजीविषा ही इन्हें टूटने से बचा लेती है और इन्हें पुनः संघर्षरत कर देती है।

श्री राजीव गांधी, कला, वाणिज्य महाविद्यालय, बसव कल्याण

अपना परिवार

मेराज अहमद

लोग-बाग उसकी पत्नी की तारीफ करते नहीं अघाते। सगे संबंधियों, ईष्ट-मित्रों और यहाँ तक कि, आस-पड़ोसियों में भी उसके सद्‌गुणी होने की धूम मच गयी थी। कुछ एक पड़ोसी और रिश्तेदार, जिनके बेटों की शादियाँ उसी के साथ हुई थीं। वह तो उससे जलने जगे थे। सेक्शन इन्चार्ज वर्मा जी के घर तो इतने ही दिनों में दोनों पति-पत्नी की हैसियत एक तरह से घर के सदस्यों जैसी हो गयी थी। श्रीमती वर्मा ने तो उसकी पत्नी का नाम लेना छोड़ दिया था और बिटिया-बिटिया की रट लगाए रहती थीं। वह स्वयं भी इतनी सद्‌गुणी पत्नी पाकर फूले नहीं समा रहा था। बस! जब भी उसका मन अधिक प्रसन्न होता तो एक ही बात मस्तिष्क में आती कि, हे भगवान! तेरी महिमा वास्तव में अपरम्पार है। तू जिसको जो चाहता है देता है। उसकी क्षमता और योग्यता तो तेरे सामने कोई मतलब नहीं रखती। लोग नाहक काम का रोना रोते हैं। मुझे इतना दे दिया कि बस! अब जितना है, उसी पर तेरी कृपा दृष्टि बनी रहे।

वास्तव में, उसे अच्छी नौकरी मिली तो यह ऊपर वाले की कृपादृष्टि का ही परिणाम था। पढ़ायी-लिखायी तो क्या थी उसकी बस! किसी तरह कक्षा-दर-कक्षा पास किये जा रहा था। नौकरी के लिए लिखित परीक्षा के समय कक्ष में न जाने कौन देवता था आगे कि, परिणाम की सूची में नाम आ गया। यह ऊपर वाले की दयादृष्टि नहीं थी तो और क्या थी भला? बात रुपयों की आयी इन्टरव्यू के समय देने की, तो अम्मा का क्या कहना। चाची और ताई भी अपने गहने बेचने तक के लिए तैयार हो गयीं। बड़े भैया का कहना था कि, ''अपनी किराने की दुकान से बीसतीस हजार तो मैं भी निकाल कर दे सकता हूँ।''

बाबू जी बोलते ही कितना कि कुछ कहते। काका ने राय रखी, ''दस बिस्वा खेत की नाहीं सही।''

ताऊ ने कहा, ''खेत नहीं, चौराहे की चार बिस्वा जमीन निकाल दी जाय।''

परिवार के सभी लोग उसकी नौकरी को लेकर उत्साहित थे। भरा पूरा परिवार था। ताऊजी, बाबू जी, काका, ताई, अम्मा और काकी, भैया यानी कि ताऊ के सबसे बड़े बेटे और उसकी पत्नी के अतिरिक्त सात भाई और तीन बहने थीं। भैया की परचूनी की दुकान के साथ कस्बे की छोटी सी बाजार में छोटा-मोटा, सीज़नी फल-सब्जियों का व्यापार था और थोड़ी सी खेती किसानी का काम भी होता था। खाने कपड़े की कोई कमी नहीं थी। परिवार के मुखिया ताऊजी, संभवतः उनके पढ़ने-लिखने की रुचि का ही परिणाम था कि उसके वर्ष दर वर्ष केवल परीक्षाएँ पास करते रहने के बावजूद उन्होंने हिम्मत नहीं छोड़ी। हालांकि कभी-कभार बाबू जी और भैया नौकरी-चाकरी मिलने में होने वाली कठिनाई पर विचार करते हुए पढ़ाई समाप्त करके कोई छोटा-मोटा काम धंधा आरम्भ करने की सलाह देते। स्वयं उसे अपनी क्षमताओं का ज्ञान था, मगर ताऊ जी को यह विश्वास था कि वह ज़रूर सफल होगा। लिखित परीक्षा के परिणाम ने तो मानो उनके विश्वास को पक्का ही

कर दिया।

उसकी सफलता से पूरे परिवार की प्रसन्नता का कोई ओर छोर नहीं था। अम्मा के साथ-साथ ताई, चाची सभी अब उसके लिए पढ़ी-लिखी अच्छे घराने की बहू के सपने देखने लगीं। भैया उसकी शादी में मिलने वाली मोटर साइकिल से अपनी मोटर साइकिल चलाने की साध पूरी हो जाने को लेकर उत्साहित थे। छोटे भाई, भाभी और बहने शहरी रंगढंग की नयी भाभी के आने की आशा के कारण उत्पन्न खुशी से निहाल हो रही थीं। पूरे परिवार की एक राय थी कि वह कहीं किसी ठीक-ठाक शहर में ठोर-ठिकाने से लगे तो घर के दूसरे बच्चों की अच्छी शिक्षा का सुभीता हो जाय।

उसके नौकरी पर जाते ही सबकी इच्छाओं के पूरा होने का समय आ गया। नियुक्ति के बाद पहले वेतन के पैसों को ताऊ के हाथ पर रखने की चर्चा तो कई महीनों तक समाप्त नहीं हुई। ताऊ भी तो उसे दो-तीन गुना करके लोगों से बताते-फिरते थकते नहीं थे, फिर दूसरी बार आने पर जब उसने कपड़े-लत्ते से भरी अटैची खोली तो भाई बहनों की प्रसन्नता तो छिपाये छुप नहीं रही थी, एक-एक सामानों की पूरे गाँव में भी चर्चा हुई।

सबकी इच्छा के अनुसार ही विवाह भी हुआ। बड़े भैया के मोटर साइकिल का शौक पूरा हुआ। यही नहीं, दान-दहेज के दूसरे सामानों के साथ-साथ बारातियों की आवभगत में कहीं कोई कमी नहीं हुई। इतने लेन-देन के बावजूद ऐसी खातिरबात हुई शादी में कि लोग चर्चा करते अघाते ही नहीं थे।

उसके साथ सब कुछ अच्छा हो रहा था। पत्नी देखने-भालने में तो ठीक-ठाक थी ही, उसका व्यवहार ऐसा था कि कुछ ही दिन बाद लोग-बाग कहने लगे कि ऐसी बहू तो चिराग लेकर ढूँढ़ने से भी बड़ी मुश्किलों से मिलती हैं। उसकी हँसी की खनकदार आवाज़ से पूरा घर गूँजा करता। देवर नन्दों में तो एक तरह से होड़ लगी रहती कि, कौन ऐसा है कि जो भाभी के आगेपीछे लगे रहने में सबसे आगे निकल जाये। वह सासों के साथ-साथ जिठानी से भी इतना मीठा बोलती कि, लगता मानो मुँह में शहद घोल रखा हो। शहर की थी। पैसे वाला परिवार था, फिर भी भोर में ही बिस्तर छोड़ देती। मायके रहते हुए शायद ही कभी चूल्हा-चक्की देखा हो, मगर यहां चूल्हे पर भी बैठने को तैयार रहती। मुहल्ले-पड़ोस की पद में लगने वाली सासों और नन्दों तक को भी प्रेम की मीठी बोली से अपना बना लिया।

विवाह के बाद जब गौने में दुबारा आयी तो लगातार दो महीने गाँव में रह गयी। वह दो हफ्ते साथ रह कर अकेले ही शहर में रहने-सहने की व्यवस्था करने चला गया। उसने उन दो महीनों में घर के वातावरण को ऐसा बना दिया कि सबको लगता ये दिन दो दिन में ही बीत गये। सासों में, एक के सर में सोने से पहले एक चुल्लू तेल छपछपाती तो दूसरे के पैर दबाने के लिए पकड़ लेती, पाँच मिनट के लिए ही सही। जिठानी का तो उसने इतने दिनों में ही रंग-ढंग ही बदल दिया। नंदों की कंघी-चोटी भी दुरूस्त रहने लगी।

पति के पास जाने से पहले गाँव में जितने दिन रही सासों को लगता कि घर का कोना-कोना हँसता रहता है। जिठानी को बैठे-बिठाये ससुराल में सखी मिल गई। देवरों ने उसके सामने अपने सीनों के राज़ का बोझ हल्का करना शुरू कर दिया था। नंदों की तो बस चाँदी हो गयी थी। हर समय की टोका-टाकी से तंग आ चुकी नन्दों को बहू के साथ हँसने-बोलने के लिए टोकने पर उसकी माओं को संकोच होता था। यहाँ तक कि, माओं द्वारा शिकायत किए जाने पर उनके बापों को भी यह कहने का मौका मिल गया कि, बच्चियाँ अपनी भाभी के साथ भी नहीं हंस-बोलेगी। तो फिर किसके साथ? रहने को तो वह पति के साथ रहने शहर चली गयी मगर ताऊ का मन कभी इस बात को लेकर पूरा नहीं हुआ। किराये का बिल्कुल छोटा-सा घर है बेटे बहू का, जब उन्हें पता चला

तो वह बहुत चिंतित हुए। शहर में दवा-इलाज या फिर मन-मुकदमें के सिलसिले में ही उनका आना-जाना था, इसलिए वहाँ से संबन्धित उनकी जानकारियाँ बड़ी सीमित थीं। कहे-सुने से ही, थोड़ा-बहुत जानते थे। सुनते थे कि मकान मालिकों की घर खाली करवा लेने की तलवार किराएदारों के सिर पर हर समय लटकी रहती है। बस! अब किसी तरह थोड़ा बहुत रुपया-पैसा इकट्ठा हो जाये, यहाँ कुछ वह व्यवस्था कर लेंगे तो छोटा-सा ही सही, अपना घर बन जायेगा। उनके इस विचार से सब सहमत थे। फिर अपना घर हो जायगा तो घर के बच्चों की पढ़ाई-लिखाई वहाँ रहकर अच्छे ढंग से हो जाएगी। ताऊ के साथ-साथ उसके चाचा की भी यही योजना थी। बहू के व्यवहार को देखकर बाबू जी को भाइयों की इस योजना के पूरा हो जाने का विश्वास हो चला था।

परिवार के लोग घर बनवाने की योजना के क्रियान्वयन में लग गये। दहेज के कुछ बचे रुपये बचे थे, इधर-उधर से भी रजिस्ट्री होते ही उसने बैंक से लोग के लिए अप्लाई कर दिया और पहली किस्त मिलते ही काम आरंभ हो गया। ताऊ जी मय गल्ला-पानी दो राज मिस्त्री और तीन मज़दूर लेकर शहर चले आये। उनका ख्याल था कि ये लोग अपने गाँव-जवार के आदमी हैं, कम पैसे भी लगेंगे और सब काम को अपना समझकर करेंगे। हुआ भी यही, काम तेज़ी से चलने लगा। वह सबको पहुँचाकर आये और हफ्तें-दिन में एकाध चक्कर लगा भी लेते। जैसे-जैसे ताऊ घर की ऊँचीं होती दीवार को देखते उन्हें लगता कि, उन्होंने गाँव में एक अच्छे घर का जो सपना बहुत पहले देखा था वह पूरा हो रहा है।

जब छत पड़ती थी तो ताऊ के साथ बड़े भैया और चाचा, पड़ोस के कस्बे की सबसे प्रसिद्ध दुकान से लड्डू बनवाकर खास तौर पर लाये। यूँ ही देखते-देखते तीन कमरों का सभी मूलभूत सुविधाओं से युक्त घर तैयार हो गया।

गृहप्रवेश के कार्यक्रम का आयोजन बड़ी घूम-धाम से किया गया। एक मेटाडोर पर अनाज, तखत, चारपायी और दूसरे घरेलू सामान जो गाँव में आसानी से मिल जाते थे, उन्हें लेकर ताऊ जी आयोजन से दो दिन पहले ही आ गये। अपने साथ ही उसके दहेज में मिले घरेलू इस्तेमाल के सारे सामान भी लाये। दूर-पास के सगे-संबंधियों को निमन्त्रण-पत्र दो हफ्ते पहले ही भेज दिया गया था। गृहप्रवेश के भोज में उसके ऑफिस और मुहल्ले-पड़ोस के लोगों को भी सम्मान के साथ बुलाया गया। यथानुसार किसी के मान-सम्मान में कोई कमी नहीं आने दी गयी। उसके ससुराल वालों को तो खासतौर पर ताऊ की इच्छानुसार शहर की एक अच्छी और साफ-सुथरी धर्मशाला में टिकाया गया। जब तक उसके ससुर-सास और साली घर पर होतीं उसके परिवार को कोई न कोई सदस्य उनकी सेवा-टहल में लगा रहता। धर्मशाला में भी जब तक वह लोग सोने की तैयारी न करने लगते किसी न किसी को उनके साथ तीमारदारी के लिए रखा जाता।

भोज के दूसरे दिन भी बहू फिरकिनी बनी इधर-उधर भागती फिर रही थी, हालांकि ताई, अम्मा, चाची और जिठानी सब हुष्ट-पुष्ट थीं। उन लोगों ने भी काफी काम संभाले थे, लेकिन अब काम का बोझ कुछ हल्का हो गया तो सबने सोचा, घर की सारी ज़िम्मेदारी जब इसी की है और उसे निभा भी रही है तो उसमें व्यवधान क्यों डाला जाय? सब थोड़ा सुस्त सी पड़ गयीं, फिर उसने जिठानी को यह कहते हुए काम करने से मना कर दिया कि, ''दीदी आप तो गाँव में पिसती ही रहती हैं बवाल की चक्की में, यहां भी आकर पिसें! अब थोड़ा आराम कर लें।''

बहू की सक्रियता को देखकर परिवार के सभी सदस्य आश्वस्त-से होने लगे थे कि बहू घर-गृहस्थी की ज़िम्मदारी निपुणता से निभाते हुए घर बच्चों की देखभाल भी कर लेगी। अगली पीढ़ी पढ़-लिख जायेगी। बाबू जी कम बोलने वाले भावनिर्पेक्ष जीव थे, मगर सब देख-सुनकर उत्साहित हो रहे थे। बड़े भाई से वह कम बोलते थे, छोटा उनसे कम बोलता। उत्साह का आवेग था कि छुपाये

नहीं छुप रहा था। समधी-समधन के बीच उनका यह उत्साह काबू से बाहर हो गया तो उन्होंने उन लोगों के सामने बहू की प्रशंसा करते हुए उनकी भी प्रशंसा आरंभ कर दी। इतना ही नहीं, बल्कि इतनी गिहथिन कन्या को सौंपने पर उनके प्रति कृतज्ञता भी प्रकट की और अपने परिवार की बच्चों की पढ़ायी-लिखायी से संबंधित भावी योजना का उल्लेख करते हुए उसकी सफलता के प्रति विश्वास का भाव भी प्रकट किया, मगर उन लोगों में उनके इस उद्‌गार को लेकर कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं दिखी।

समधी तो खामोश ही रहे, लेकिन समधन प्रसन्नता प्रकट करते हुए बेटी की प्रशंसा के लिए उन्हें धन्यवाद देने और उनकी इस बात को उनके परिवार के संस्कारी होने एवं उनका बड़प्पन मानने के बजाय उल्टे अपनी राय देने लगी, ''भाई साहब बात तो सही है अपनी जगह आपकी, मगर इतना बड़ा परिवार और इतने सारे बच्चों की ज़िम्मेदारी निभाना कहाँ तक संभव है? और कब तक? आपके अपने परिवार का बात अलग है। जवाँई जी के छोटे भाई-बहनों तक की बात तो समझ में आती है!''

समधन ने ये बात बड़े सरल अंदाज में बिना किसी लाग-लपेट के कही। उनकी आवाज़ भी सामान्य थी, मगर यह आवाज़ बाबू जी के कानों में पिघले शीशे की तरह उतरती हुई उन्हें सुन्न कर गयी।

समधन बोले जा रही थीं, ''मैंने बिटिया को समझा भी दिया है कि ये प्रेम-व्यवहार तभी तक का है जब तक बोझ न बने।''

बाबू जी की स्थिति से अंजान उन्हें चुप देख उसकी साली ने समझा कि बाबू जी भी सम्भवतः माँ की बातों से सहमत हैं और जो माँ कह रही है वही वह भी चाहते हैं, वह थोड़ा उत्साहित-सी होती बोली, ''बाऊजी! दीदी तो निरी मूर्ख हैं। पहले तो मम्मी से बहसबाजी पर उतर आयीं। जब मम्मी ने उन्हें समझाया।''

''काफी ऊँच-नीच समझाया हम लोगों ने तब समझी वह।'' उसके पिता भी अपनी बेटी की भाँति उत्साहित होते हुए बोले और इस आशा से अपने समधी का मुँह देखने लगे कि शायद इसके लिए भी वह उन लोगों का आभार प्रकट करें।

बाबू जी अभी तक समधन की ही बातों के प्रभाव से मुक्त नहीं हुए थे। सम्भवतः उन्होंने पिता और बेटी की बात न सुनी हो, न समझी हो। बस! आपका अपना परिवार, यही वाक्य उनके मस्तिष्क में गूँज रहा था। लग रहा था कि यह गूँज निरंतर तीव्र हो रही है। एक स्थिति ऐसी आ गयी कि वह गूँज मानो हथौड़े की चोट बनकर उनके मस्तिष्क को क्षत-विक्षत करने लगी।

अर्चना ठाकुर की तीन लघुकथाएं

उत्सव

जय-जय गंगे शहर के सबसे रईस व्यवसायी अपने भगत छोले में मोबाइल फ़ोन रखते हुए अपने खास आदमी को इशारे से बुलाते है।

दिवाकर कैसी तैयारी चल रही है।

आपके कहे अनुसार पूरी पुख्ता तैयारी हो रही है - देखिएगा इस बार कुम्भ मेले का ये सबसे आकर्षक और भव्य पंडाल होगा।

साधूराम मुस्कराते है और चारों ओर एक तेज नज़र दौड़ाते है। चारों ओर इसी उत्सव की तैयारियाँ जोरों पर थी। हरी नाम, राम नाम के साथ इस महा उत्सव की तैयारी प्रारम्भ हुई। एक तो वर्ष का बड़ा मेला, फिर पवित्र संगम किनारे और उस पर देश भर से आने वाले साधुओं का जमघट।

देखों धन की परवाह मत करना और ध्यान रखना की जब तक उत्सव चल रहा है तब तक किसी साधू को भूखा न जाने देना।

जी बिल्कुल ध्यान रखूँगा आखिर अतिथि - देवो भवः।

देखो मैंने हिमालय में साधना रत एक महात्मा को बुलाया है और तुम्हारा काम होगा की पंडाल में ज्यादा से ज्यादा साधुओं की भीड़ जुटाना-और मैं दिखा दूंगा की मैं जितना अच्छा व्यवसायी हूँ उतना ही अच्छा भक्त भी हूँ।

जी वो तो है बिल्कुल-साँच को आँच नहीं। पूर्ण निष्ठा से वह सर झुकाकर कहता है।

मैंने अब तक धन कमाया है और अब मैं धन-धान्य से ही भक्ति कमाऊँगा और इस काम में मैं कोई कमी नहीं देखना चाहता।

फिर साधूराम व्यवसायी अपनी नज़र पंडाल की सजावट में लगे मजदूरों की ओर डालता है।

वो देखो - वो मजदूर वहाँ बैठा क्या कर रहा है? दोनों उस ओर बढ़ जाते है।

ऐ - ये क्या हो रहा है - यहाँ कोई काम चोरी नहीं चलेगी।

वह वृद्ध मजदूर जल्दी से अपनी हँफनी संभाल लड़खड़ाता फिर से ढेला उठा लेता है।

इस तरह दिवाकर आगे बढ़ता जाता है।

ये क्या इन पत्थरों के ढ़ेर पर ये किसका बच्चा है - ये पत्थर क्या इसके खेलने की जगह है? - इसे जल्दी यहाँ से हटाओ-इन पत्थरों से श्री श्री महादेव का सिंहासन बनेगा - कमबख्तों ने पत्थर दूषित कर दिए।

दिवाकर की तेज़ आवाज़ सुन कर एक मजदूर औरत जल्दी से दौड़ कर आती है और अपने दूधमुँहें बच्चे को उठाकर मिट्टी में बैठा देती है।

फिर दिवाकर पंडाल के दूसरे कोने में देखता है। जहाँ एक आठ नौ साल की एक मजदूर लड़की अपने खाने की पोटली खोल रही थी।

अरे - ओ - ये क्या करती है - यहाँ अपना गंदा पोटला मत खोल - और अभी तो दोपहर भी ठीक से नहीं ढली अभी से खाने लगी - चल काम कर - नहीं तो दिहाड़ी में से सिर्फ दो रुपया दूंगा।

सभी मजदूर आवाज़ को निर्देश और नियति समझ काम में तत्पर हो जाते है। दिवाकर वहाँ खड़ा कहता है- ऐसे बीच7बीच में काम छोड़ खाने या घर जाने की बात की तो याद रखना सीधे घर ही भेज दूंगा-कामचोर कहीं के।

इस तरह मजदूरो को हड़का कर दिवाकर बड़े गर्व से मुस्कराता हुआ साधुराम की तरफ देखता है। उनके चेहरे पर भी मुस्कान देखता है। जो उसके लिए पुरस्कार की तरह थी। फिर साधुराम अपने भगत चोले की आस्तीन उठा कर अपनी महंगी सी घड़ी में समय देखकर अपनी कार की तरफ बढ़ जाता है।

सेकेंड मैरिज

उफ! मैंने अख़बार पटक दिया। अखबार में ख़बर क्या छपी है, मुझे तो हर पल लगता है जैसे मेरे हाथों में कोई लहू लुहान चिथड़े हो, हर दूसरी खबर खून का गुबार भरे लत्थ-फत्थ छिले मन के टुकड़े हथेलियों में भर देती है। कौन है जो नारी सम्मान की बात करते है, देखकर तो लगता है जैसे आधा अख़बार नारी वेदना का खुला चिट्ठा है। जाने कैसे लोगबाग है जो सुबह-सुबह की चाय की चुस्कीयों के साथ अखबार चाटते है। मेरा मन तो सुबह अख़बार देख घृणा और घिन से भर जाता है।

तभी फ़ोन आया। एक हैलो में परिचय और कारण दोनों समझ गई।

सुनो दोपहर का खाना मत बनाना पार्टी में जाना है।

क्या कहा -सैंकण्ड मैरिज की -!

मुझे उत्तर भारतीय के लिए आसाम का ये दस्तूर रोचक कम अचंभित ज्यादा लगा। मेरे ढ़ेरों सवालों पर एक संक्षिप्त-सा उत्तर दे पतिदेव ने जल्दी में फ़ोन काट दिया। पर साथ ही छोड़ गए मुझे विचारों के गहरे कुएं में, अब भरों विचारों के घड़े के घड़े सेकेंड मैरिज के तथ्य को जानने, बूझने मैं पार्टी में गई। वहाँ पहुँच कर देखा - ऊपर से एक हाल दिखने वाला टैंट अंदर दो-तीन कमरों में तब्दील हो जाता है। मेघला (असमिया साड़ी) में सजी महिलाओं के बीच एक मंच नुमा स्थान पर बैठी एक तेरह चौदहा साल की बच्ची पर बरबस ही मेरी नज़र पड़ी। गहरे मेकअप में जैसे जानबूझ कर पोता गया हो उसे। मैं नोट वाला लिफाफा उसके हाथों में पकड़ा कर उसकी माँ के इशारे पर एक भीड़ का हिस्सा बन बैठ गई और अपनी सहभाषी परिचिता से बात करने लगी।

आसाम में जब लड़की प्रथम बार ऋतुकाल में प्रवेश करती है तो वे एक समूह भोज का आयोजन करते है।

ओह!

उसी को तो कहते है सेकेंड मैरिज।

क्या! ऐसा समाज जहाँ लड़की के होने और उसके बड़े होने पर मूक शोक मनाया जाता हो उस समाज की किसी सभ्यता में नारी के इस रूप की आराधना की जाती है। सम्मान प्रदान किया जाता है। वाह, सुबह का मुड़ा चेहरा मेरा मुस्करा पड़ा।

शोर

आधुनिकता और उन्नति की दौड़ में भागता यह शहर भी लगातार अपना रूप परिवर्तित कर रहा था। चारों ओर सिर्फ निर्माण ही निर्माण हो रहा था, तब किसना को अपनी चालीस वर्ष पुरानी झोपड़ी सुकोड़नी पड़ी क्योंकि वह इस आधुनिकता की लहर का रोड़ा बन गई थी। वह अपनी सुकड़ी झोपड़ी से झाँकता हुआ देखता है, वहाँ कोई बहुमंज़िला इमारत बन रही थी, साथ ही सामने की वर्षों से पड़ी कच्ची जमीन रोड़ी और तारकोल में नहा कर तैयार हो रही थी। दिन-रात वहाँ काम हो रहा था। किसना ने कभी भी इतनी मशीनें एक साथ नहीं देखी थी, उसे ये सब देख ऐसा लगता जैसे वहाँ सारी दुनिया की मशीनें एक साथ एकत्र कर दी गई हो।

दिन भर का शोर वह अपने कानों से सुनता रहता, क्योंकि उसे और उसके परिवार को वही काम मिल गया था। रात में भी वह वहाँ का शोर सुनता और सोचता की यह शोर नव निर्माण का है, इस शोर और घर्षण के बाद वहाँ सुख-सुविधा की तरंगे गूँजेगी, लेकिन वह अपने झोपड़े के सीमित क्षेत्र में दुबके परिवार के चिल्ल-पों को सुनता तो वह वेदना से तिलमिला उठता तब उस पल उसको ये शोर दर्द और चुभन भरा लगता।

कभी वह रोड-रोलर के धरती को रौंदने की आवाज़ सुनता साथ ही देर तक काँपती धरती को अपने पाँव के नीचे महसूस करता है और सोचता की कुछ दिन में वहाँ रंग बिरंगे मशीनी घोड़े सरपट दौड़ेंगे, शायद तब भी उसे वहाँ कोई काम मिल जाए ताकि तब भी वह इस सुख-सुविधा का एक हिस्सा बना रहे। फिर वह घर के भीतर चूल्हे में रखे पतीले में खाना खोजती कलछी की खड़-खड़ की आवाज़ सुनता है तब किसना निराशा की दहलीज लांघ कर निरुत्साही आंखों में उम्मीदे पाले अपनी काँपती देह के साथ उन मशीनी शोर की तरफ बढ़ जाता है।

तेजपुर, सोनितपुर, जिला- आसाम

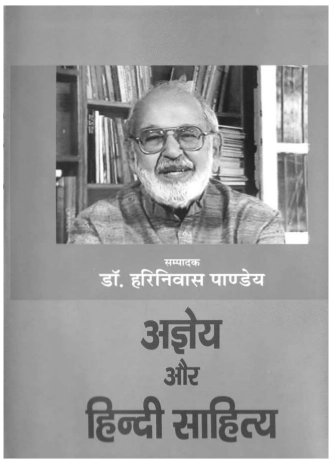

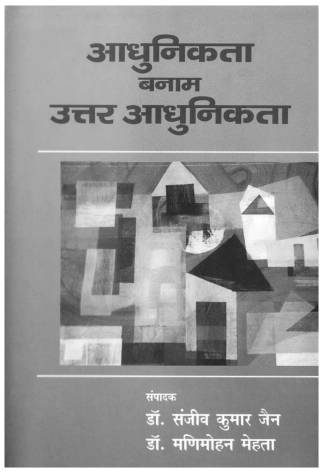

सुधा ओम ढींगरा की चार लघुकथाएं

अनुत्तरित

दरवाजे पर ही वह ठिठक गया। बंद दरवाज़ा खोल नहीं पाया। अन्दर से बॉस की फ़ोन पर किसी से बातें करने की आवाज़ आ रही थी।

सर, कंपनी को परम्परावादी तरीके से चलाने वाला लीडर चाहिए और जान वाईट, वह कजेर्वेटिव नहीं, बहुत आज़ाद प्रवृत्ति का है। सर वह कैथोलिक भी नहीं।

नहीं सर, रिपब्लिकन नहीं.... मुझे तो अभी-अभी पता चला, वह डेमोक्रेट है। जी...जी समझ गए आप....उदारवादी व्यक्ति देश और कंपनी नहीं चला सकता।

''बाब कालड्वेल...नहीं सर...वह पहले ही अफ्रीकन माईनर होने से काफी पदोन्नति ले चुका है। तरक्की के लिए अब उसे कुछ वर्ष इंतज़ार करने दें। सर, अपने बजुर्गों की कुर्बानी को ये लोग कैश करना चाहते हैं।''

''जूली गूजो....सर यहाँ भी वही बात है महिला होने का लाभ ले रही है। बाब और जूली दोनों इस पद के काबिल नहीं।''

''और सुमित...''

अपना नाम सुन कर वह सतर्क हो गया।

''सर, एशियंस खास कर भारतीयों को पद देने की ज़रूरत नहीं होती, हर साल वेतन थोड़ा बढ़ा दें, अच्छा बोनस दे दें और बस पद का लालच...दस लोगों का काम कर देंगे। बहुत मेहनती होते हैं। जी...जी सर, सुमित के लिए यह सब सुविधाएँ मैं अपने बजट से कर सकता हूँ।''

''सर, हटा दें इस पद को। यह बड़ी मंहगी पोजीशन है, कंपनी के खर्चे बहुत बढ़ जायेंगे और काम तो सुमित से करवा लेंगे, मेरे पर छोड़िए।''

उसे लगा, उसका शरीर शून्य में लटक रहा है। देश विसंगतियों से भाग कर वह यहाँ आया था। अब वह भाग कर जाए तो कहाँ जाए .....

अनुसरण

ममता अपने बेटे के व्यवहार से हैरान है और परेशान भी। वह स्कूल से आते ही हल्का-सा कुछ खाकर यह कह कर अपने कमरे में बंद हो जाता है कि वह होमवर्क कर रहा है, उसे बाधित न किया जाए। कई दिन ममता देखती रही....बेटा बड़ा हो गया है कैसे कुछ पूछे? कैसे कुछ कहे? कद में वह अपने पापा से भी लम्बा है।

वह चाहती थी कि उसका पति उसकी तरफ ध्यान दे पर वह लापरवाही से बोला- ''ममता, हमारा बेटा बड़ा हो रहा है। उसे अब बच्चा मत समझो। इस उम्र में लड़कों में कई तरह के बदलाव

आते हैं। उसे उन्हें समझने दो। क्या हुआ अगर वह अकेलापन चाहता है। हर बात की चिंता मत किया करो।''

यह सुन ममता कुछ बोली तो नहीं, पर माँ की छठी इन्हीं पुलिस सायरन सी उसके भीतर बजती रही। एक दिन उसने उसके कमरे के दोनों दरवाज़ों के मध्य पारदर्शी टेप लगा दी। बेटे ने कमरे का दरवाज़ा बंद किया पर वह पूरी तरह बंद हुआ नहीं। बेटे को पता नहीं चला। थोड़ी देर बाद ममता दरवाज़ा खोल कर भीतर चली गई। बेटे की पीठ दरवाजे की तरफ थी और कम्प्यूटर का मोनिटर दरवाज़े की ओर। वह आराम से बैठा कम्प्यूटर पर पोर्न साईट देख रहा था। ममता ने कमरे में घुसते ही वह सब देख लिया था, बेटे ने माँ का आभास होते ही उसे बंद करना चाहा।

ममता गुस्सा गई, अपने को काबू में करते हुए बोली- ''बेटा होम वर्क के समय यह क्या देख रहा है तू। ये साईट्स नहीं देखते। अपना होम वर्क करो।''

''माम, डैड कई बार आधी रात को उठ कर ये साईट्स देखते हैं तो मैं दिन में क्यों नहीं देख सकता?''

''क्या कह रहा है तू ?'' ममता के मुँह से उखड़ते हुए शब्द निकले।

''हाँ माम, डैड जब आधी रात को प्रोजेक्ट पर काम करने स्टडी रूम में जाते हैं तो यही देखते हैं। एक बार मैं पानी पीने रसोई में गया तो स्टडी रूम का दरवाज़ा खुला था, मैं अंदर चला गया। ऐसी ही साईट खुली थी। पापा शौचालय में थे।'' ममता का शरीर ग्लानि में पिघलने लगा।

उपरांत

होली का हुड़दंग समाप्त हुआ। सड़कों, बगीचों-वातावरण में रंग ही रंग बिखरे पड़े थे। रंगों से विभोर भावनाएँ भी दिनचर्या की ओर मुड़ गई थीं। बलकार के बगीचे के कोने में कुछ फूल गर्दन उठाये चारों ओर निहार रहे थे। होली के रंग एक-दूसरे पर डालते समय बहुत सी क्यारियां बलकार के दोस्तों के पैरों तले कुचली गई थीं। कोने की ही कुछ क्यारियां बच पाई थीं। समीर के हल्के से झोंके ने जमीन पर पड़े सूखे रंग थोड़े से उड़ा दिए थे। उसी की मस्ती में कोने के सुरक्षित एक फूल ने झूमते हुए दूसरे फूल से कहा - दोस्त ! आदमी अपने आप को क्या समझता है? कृत्रिम रंगों से अपने जीवन में रंग भरता है, गले मिल मित्रता निभाता है और फिर एक-दूसरे से गाली-गलौच, लड़ाई-झगड़ा, मार-पिटाई, खून-खराबा यहाँ तक कि एक दूजे पर गोली तक दाग देता है।''

दूसरा फूल बोला - ''अरे दुखी क्यों होते हो? आदमी नादान प्राणी है - आदि काल से देखता आ रहा है कि प्रकृति इसके हर दिन, त्यौहार, उत्सव, मेले, जन्मदिन और सालगिरह को हम फूलों से रंगीन और महकीली बनाती आ रही है... अरे हम तो इसका शोक भी कम कर देते हैं। पर यह ऐसा स्वार्थी और कृतध्न है कि प्रकृति से ही सब सीखता है और प्रयोगशाला में उसे थोड़ा फेर बदल कर अपने आप को अविष्कारी समझता है।''

तीसरा बोला- ''अरे यार मैंने तो यहाँ तक सुना है कि प्राकृतिक साधनों की पुरानी पद्धतियों को नया रूप देकर यह सौन्दर्य प्रसाधन, खुश्बूएँ यहाँ तक की बहुत सी दवाईयां बना कर स्वयं पर गर्वीला हो रहा है।''

तभी बलकार के माता-पिता होली के बाद नहा धो कर बाहर आते दिखाई दिए-पहले फूल ने सिर नीचे कर लिया जैसे मुरझा गया हो-बोला- ''मैं मोटे के कोट पर नहीं टंगना चाहता। साँस की दुर्गन्ध और शराब की बदबू से मैं मर जाऊंगा। जब हमें सूंघने आता है तो कितनी बास मारता

है।''

दूसरा इठलाया - ''अगर बलकार की मम्मी ने हाथ बढ़ाया, मैं तो कट जाऊँगा। उनके जुड़े पर लग कर इतराऊँगा। कितनी सुंदर हैं, कलियों के इत्र से हर समय सुगंधित रहती हैं। मुरझा कर गिरते समय भी उन्हें छू कर गिरूंगा।''

तीसरा बोला - ''लुच्चा कहीं का।''

बलकार के मम्मी-डैडी फूलों की उधड़ी हुई क्यारियां देखते गेट से बाहर चले गए।

हवा में तेज़ी आई और जहाँ-तहाँ फैले रंग उड़ा ले गई।

फूल खीं....खीं ...खीं कर हँसनें लगे- ''बच गए भाई, आज तो झूम लें कल तो हमारी पंखुड़ियों में बिखरना ही है।''

मर्यादा

''दादी जी, पापा रोज शराब पी कर, मेरी माँ को पीटते हैं। आप राम-राम करती रहती हैं, उन्हें रोकती क्यों नहीं?'' पोती ने नाराज़गी से पूछा।

''अरे तेरा बाप किसी की सुनता है? जो वह मेरे कहने पर बहू पर हाथ उठाने से रुक जायेगा और फिर पति-पत्नी का मामला है, मैं बीच में कैसे बोल सकती हूँ।''

''आप जब अपने कमरे में मेरी माँ की शिकायतें लगाती हैं, तब तो वे आपकी सारी बातें सुनते हैं और फिर पति-पत्नी की बात कहाँ रह गई? रोज तमाशा होता है।''

''वह काम से सीधा मेरे कमरे में आता है, तेरी माँ को जलन होती है, तुझे भी अपनी माँ की तरह, उसका, मेरे कमरे में आना अच्छा नहीं लगता।''

''दादी जी, आप पापा की माँ हैं, आपका हक सबसे पहले है, पर आपके कमरे से निकल कर, वे शराब पीते हैं और माँ से लड़ते-झगड़ते हैं, उन्हें पीटते हैं, यह गलत है। पापा को बोल दीजियेगा कि अगर आज मेरी माँ पर उन्होंने हाथ उठाया, तो हम तीनों बहनें, माँ के साथ, खड़ी हो जाएँगी और ज़रूरत पड़ी तो पुलिस थाने भी चली जाएँगी, पर माँ को पिटने नहीं देंगी।''

''हे राम, यह सब दिखाने से पहले मुझे उठा क्यों नहीं लेता, मेरा बेटा बेचारा अकेला...काश! मेरा पोता होता, यह दिन तो न देखना पड़ता, बाप की मर्यादा रखता।''

''आप किस मर्यादा की बात करती हैं...मर्यादा सिर्फ पुरुष की ही नहीं, औरत की भी होती है...।

101 Guymon Court, Morrisville, NC-27560 USA

सुकृता पाल कुमार की दो अंग्रेज़ी कवितायें

अनुवाद– सिद्धेश्वर सिंह

नीरवता को तोड़ते हुए

शब्द झरते हैं
सुमुखि के मुख से
बारिश की तरह

रेगिस्तानों पर।
अंतस में आड़ोलित
आँधियों और चक्रवातों के पश्चात्

शब्द गिरते हैं
शिलाखंडों की तरह।

अटक गए हैं शब्द
जमी हुई
बर्फ की तरह

प्रेमियों के कंठ में।
विचारों में पिघलते हुए
मस्तिष्क में उतराते हुए

एकत्र हो रहे हैं शब्द
अनकहे वाक्यों में।

परिज्ञान

रोशनी के उस वृत्त के
ठीक मध्य में
उभर रहा है
अनुभवों की सरिता में
हाँफता हुआ खीजता हुआ
मेरे जीवन का सच

इतना उजला
कि देख पाना मुमकिन नहीं मेरे वास्ते।

गड्डमड्ड हो गए हैं सारे रंग
ज़िन्दगियाँ एक दूजे में सीझ रही हैं
उजला होता जा रहा है अधिक उज्ज्वल
और मैं
पहले से अधिक दृष्टिहीन।

अनुवादक संपर्क- ए-3, आफीसर्स कालोनी, टनकपुर रोड, अमाऊँ, पो.-खटीमा, ऊधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड, पिन-262308

डॉ. डी. एम. मिश्र की दो ग़ज़लें

1

अपना है मगर अपनों सी चाहत नहीं देता
उड़ता हुआ बादल कभी राहत नहीं देता।

फ़रमाइशें हैं शान में उनकी भी हो ग़ज़ल
मेरा ज़मीर इसकी इजाज़त नहीं देता।

मेरी भी ख़्वाहिशें हैं कि छू लूँ मैं आसमान
टूटा हुआ पर उड़ने की ताकत नहीं देता।

बेवजह वो रखता हैं सदा खुद को नुमायाँ
मक्कार किसी और को अज़मत नहीं देता।

करिये मदद ग़रीब की दिल खोलकर जनाब
हर शख़्स को वो एक सी क़िस्मत नहीं देता।

मैंने यही सुना है बुज़ुर्गों की ज़ुबानी
अल्लाह दग़ाबाज़ को बरकत नहीं देता।

2

इतने करीब रहके मगर भूल गये हैं
फिर क्या गिला है आप अगर भूल गये है।

इतनी जनाब आपने कर ली है तरक्की
अपना वो वतन और वो घर भूल गये है।

परदेस में भी आ के आप कामयाब हैं
माँ-बाप की दुआ का असर भूल गये हैं।

कैसे कहूँ कि आप वफ़ादार नहीं हैं
जब से उधर गये हैं, इधर भूल गये हैं।

मैं का हिमायती हूँ इसी बात पर मगर
पीने लगे तो लोग ज़हर भूल गये हैं।

कितने भरे हुए हैं वो झूठे गुमान से
बाँहों का बल है याद जिगर भूल गये हैं।

रहेंगे निशां हमारे

डॉ. दया दीक्षित

अपने वतन की सरजमीं की हर पाक खुसूसियतों से जब बेहद लगाव होता है तब उसकी हरेक खासोआम रवायत दिल में इस कदर पिनहा हो जाती है, कि उसका टूटना, बिखरना, जुड़ना, बनना जैसे अपने वुजूद का टूटना बिखरना और बनना महसूस होने लगता है; ऐसे इस आत्मीय जज्बे की जमीन पर संभव हो पाती है 'पारिजात' जैसे खूबसूरत और जहीन उपन्यास की बुनियाद और इमारत! आज के नए जमाने के वैश्विक परिदृश्य की सलाहियतों, खूँरेजियों को अपने लेखन में उभारने, उतारने वाली कलम की सरनाम साधिका नासिरा शर्मा का महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक उपन्यास है यह। ''मैंने कल रामगढ़ जाते हुए एक अजीब पेड़ देखा। उसका नाम 'पारिजात' है। पारिजात हरसिंगार को भी कहते हैं, मगर यह हरसिंगार नहीं, पूरे मोटे तने का बेहद सख्त छाल का पेड़ था, जिसके फूल अगस्त के दूसरे-तीसरे हफ्ते में फूलते हैं। यह सफेद फूल कम ही लोग पाते है। सुना है, दुनिया में नहीं तो भारत में यह इकलौता पेड़ है, जिसकी शाख कानन वन से लाकर लगाई थी। अपने कष्टकर समय में पांडवों ने अपने गांडीव सहित सारे शस्त्र इसकी डालों के बीच छुपाए थे। मेरा मन है कि मैं तुम्हारे बेटे का नाम पारिजात रखूँ। इस बार जब तुम लोग आओगें तो मैं खुद ड्राइव करके तुम्हें लखनऊ के आगे उस जगह ले जाऊँगा, जहाँ हमारी लोककथा, दंतकथा, इतिहास, धर्म और साहित्य सभी कुछ मिला हुआ है।''(नासिरा शर्मा, पारिजात, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-375) प्रो. प्रहलाद दत्त का यह कथन पारिजात की दुर्लभ विलक्षणता का द्योतक है। पारिजात के नाम और गुणधर्म के निकष पर उपन्यास की विशिष्ट सांस्कृतिक चेतना समकालीन उपन्यास जगत में दुर्लभ है। इस अर्थ में एवं कथा पात्रों के जीवन प्रसंगों में 'पारिजात' का गुणधर्म अपने संपूर्णत्व में विद्यमान है। कृति का यह नाम अनेक रूपों में चरितार्थ होता है।

'पारिजात' एक ओर अपने दामन में बेशकीमती रूहानी अशआरों का खजाना लिए तमाम तारीखी सच्चाइयों का इस्लामिक इतिहास दिखलाता है, तो दूसरी तरफ आज के उस अभिजात मुस्लिम वर्ग का पाक चेहरा अनावृत्त करता है जो अति आधुनिक होते हुए भी इल्म और दीनों-ईमान की हिफ़ाजत के लिए फ़िक्रमंद है।

इसकी मिसाल है रूही की माँ फिरदौस जहाँ, रोहन तथा उसके प्रोफेसर पिता! अजीब बात है कि 'सुख' के क्षण इनकी ज़िंदगी में 'पारिजात' की तरह दुर्लभ है। वैसे दुनियावी दृष्टि से देखा जाय तो इनमें से कोई भी असफल या आसुरक्षित नहीं! प्रोफेसर साहब अपने विषय के विशेषज्ञ है। शिष्य आज भी उन्हें अपना आदर्श मानते हैं तथा उनके अनुगत है। देश-दुनिया की कई जगहों पर वे सब्जैक्ट एक्टपर्ट या रिसोर्स पर्सन बन कर जाते हैं। किताबें लिख रहे हैं। पुत्र रोहन पढ़ा-लिखा खूबसूरत जहीन नौजवान है, विदेश में नौकरी करता रहा है। अपने इल्म से अच्छा-खासा कमाता है। रूही की माँ फिरदौस जहाँ पुश्तों से चली आ रही रईस ससुराल की खानदानी महिला है, पति की बेशुमार दौलत की वारिस हैं। बेटा सपरिवार विदेश में है। बेटी यहीं उनके करीब लखनऊ में ब्याही है। मगर भीतर से ये सभी बेहद

टूटे-हारे पस्त हिम्मत और गमगीन है। फिरदौस जहाँ का जीवन व्हील चेयर तथा कोठी में कैद होकर रह गया है। पति का साया सिर पर नहीं रहा। जवान बेटी रूही विवाह के कुछ समय बाद ही बेवा हो गई। बेटे बहू की सूरत देखने के लिए तरसती रहती है। ऐसी ही दुखावस्था रोहन के पिता प्रोफेसर प्रहलाद दत्त की है। पत्नी की मृत्यु का दंश तथा इकलौते पुत्र का खंडित वैवाहिक जीवन उनका जीना दुभर किए हुए है। बेटे का जीवन इतना विखंडित है कि पुलिस कचहरी हवालात के चक्कर काटने से मुक्त नहीं हो पा रहा है। उसकी लगी लगाई नौकरी भी इन्हीं चक्करों के चलते छूट गई। पराई धरती (विदेश) पर उसे रहने खाने तक के लाले हैं, कानून का शिकंजा देश छोड़ने की इजाज़त नहीं दे रहा है। बेटे की इस बर्बादी पर पिता का हृदय ज़ार-ज़ार रोता है और रोहन! होनहार प्रतिभा सम्पन्न युवक जिसे विदेशी लड़की ने (एक तरफ से फाँस कर) अपने स्वार्थों के चलते इस्तेमाल किया। स्वार्थ पूरा होते ही तरह-तरह के इल्जाम थोप नन्हें बेटे पारिजात को लेकर स्वदेश चली गई। हमेशा के लिए। रोहन ने जिस पुत्र को जी जान से सींचा पाला था, आज वही उसके लिए दुर्लभ सपना बन गया है। बेटे की याद में तड़पता रोहन झूठे अभियोगों में फंसा कानूनी कार्यवाहियों को भुगत रहा है!

उपन्यास की नायिका 'रूही' है। सुख उसके लिए भी पारिजात की भांति दुर्लभ है। खानदानी ससुराल की तमाम मिल्कियत संभावना उसके लिए दुष्कर काम है। पति की मृत्यु ने उसे नर्वस ब्रेक डाउन में डाल दिया है। नौकरों के सहारे किसी तरह उसका जीवन चल रहा है। अनिंद्रा की बीमारी के चलते उसके सोने जागने का कोई क्रम या ठिकाना नहीं है। ज़िंदगी घिसट रही है।

देखा जाय तो उपन्यास का शीर्षक लक्षणा और व्यंजना से युक्त है। नायक रोहन के बेटे का नाम है पारिजात। जिस तरह ज़िंदगी का सुकून रोहन के लिए दुर्लभ है, उसी तरह बेटे पारिजात को फिर से पाना लगभग असंभव है। वह बेटे की एक-एक बात याद करके फफक पड़ता है। किस तरह उसे नहलाता था, कैसे उसकी नैपी बदलता था...। उसके दिल में उसकी याद इस कदर समाई है कि जब भी वह किसी स्त्री के साथ बच्चे को देखता है अपना पारिजात समझ दौड़ पड़ता है। उसकी झलक पाने के लिए तड़प उठता है। पेरिस में जब वह एक अंग्रेज़ महिला के साथ एक खूबसूरत बच्चे को देखता है तो बेतहाशा दौड़ पड़ता है उसे पाने के लिए, मगर भीड़ में वह बच्चा ऐसा गुम हो गया कि फिर मिला ही नहीं। अपनी हालत पर उसका दिल रोने को चाह रहा था। काश! वह एक बार पारिजात की झलक देख लेता। उसके चेहरे का दीदार कर लेता, जिसके लिए वह हर पल तड़पता है। इस एक लम्हें से उसकी आँखें तृप्त तो हो जातीं कि अब वह कैसा लगता है...अब तो उसके सारे दाँत आ गए होंगे। वह हँसता हुआ कैसा लगता होगा? जब वह खोया था तब बोलना नहीं जानता था। अब वह बोलता होगा। उसकी आवाज़ कैसी होगी? मेरा पारिजात! मेरे बेटे! मुझसे यूँ आँख मिचौली मत खेलो।'' (वही, पृष्ठ-400)

अंदाजों में बेटे की बढ़ती उम्र और बदलती रंगतों के कयास लगाता रहता है। कभी पुकार उठता है। ''पारिजात....उसने अपने अंदर का उबलता वात्सल्य उस अरब किशोर को लिपटाकर जैसे खाली कर लिया हो। दोनों कुछ पल उसी हालत में खड़े रहे, फिर धीरे-धीरे हाथ में हाथ डाल नीचे उतरे। किशोर की आँखें बड़ी-बड़ी हो पानी में तैरते कमल की तरह हो गई थीं। वह जिस तरह रोहन का हाथ पकड़े था, रोहन को महसूस हो रहा था कि उम्र की ढलान पर जैसे पारिजात उसे सँभालकर धरातल पर ला रहा हो। उसके चंपई चेहरे पर एक शानदार मुस्कान उभरी उम्मीदों और मुरादों से भरपूर।''(वही, पृष्ठ-376)

बेटे की जुदाई का गम रोहन की कलम से कविता बनकर फूट पड़ता है-

''अगर तुम बोलना जानते बेटे।
तो
ज़रूर पूछते कि
वह कहाँ गया जो
नहलाता था, पहनाता था कपड़े
बदलता था मेरी नैपी और टहलाता रातों को मुझे
कहाँ गया जो सुनाता था लोरी
और सुलाता था अपनी चौड़ी छाती पर
कहाँ खो गया वह चेहरा
जो मेरे इतने करीब था
जिसने मेरे यह खिलौने मम्मी।''(वही, पृष्ठ-307)

''तुम्हीं हो मेरे प्यार के साक्षी
मेरी गंध, उसकी सुगंध
मेरा माथा, उसके होंठ
दादा की नाक, दादी की आँखें
सबका कुछ-कुछ लेकर तुम
इकलौते प्यार हो
पारिजात मेरे।''(वही, पृष्ठ-306)

अपने बेटे को लगभग खो चुका वह पत्नी की उस मुहब्बत को याद करके हतप्रभ है, जो अब उसकी हमसफर नहीं है। उसे विश्वास ही नहीं होता कि क्यों ऐलेसन ने उसकी खुशहाल ज़िन्दगी में जिल्लत और जलालत भरी जबकि वह तो पूरी तरह समर्पित था उसके प्रति। यह जानकर भी कि ऐलेसन लैस्बियन है। वीक एंड पर अपनी सखी के साथ....''वह तो उस रात से पहले शक भी नहीं कर रहा था कि घर और बाहर ऐलेसन की बढ़ती औरतों की दोस्ती वास्तव में उसकी ज़िंदगी को किधर खींच रही है?''(वही, पृष्ठ-314)

ऐलेसन जैसी थी रोहन को मंजूर थी! वही ऐलेसन उस पर तरह-तरह के अभियोग लगाकर अपनी माँ और नानी के यहाँ चली गई। रोहन को अंतहीन संत्रास देकर! पैरिस में भीड़ में रोहन ने एक झलक मात्र देखी थी ऐलेसन और पारिजात की! फिर तो दीवानावार उन्हें ढूँढ़ा! मगर व नहीं मिले। ऐलेसन के दिये जख्म से रोहन की नींद हराम हो गई। नीम नींद की हालत में उसने सपने में देखा कि वह ऐलेसन से पूछ रहा है कि तुमने मेरे साथ ऐसा क्यों किया? सारी सेविंग मेरे और बेटे के नाम कर देंगी। वह नफ़रत करती थी इंडियंस से. ..उसे अपने इंगलिश होने पर बड़ा गर्व था!....पता नहीं तुम क्या कह रही हो? आज तक जाने कितने अंग्रेज़ औरत-मर्द ब्लैक ब्राउन लोगों से शादी की है उसे बखूबी निभाया भी हैं। फिर यह नफरत तुम्हारी नानी के दिल में इतनी गहरी कहाँ से आई, कोई खास वजह?..समझो यह एक इत्तफाक था, एक व्यक्तिगत सोच थी...बस' ऐलेसन ने सरल सी व्याख्या दी।

'तुम जल्दी ही ठीक होगी' रोहन ने अपने को सँभालकर बोला।

'तुम्हें ऐसा लगता है?'

'हाँ? आई यम श्योर!'

'तुम नहीं बदले!' तुम्हारे एक दोस्त ने मुझसे पूछा था कि तुम्हारे इन गालों पर मेरे दोस्त रोहन ने लाखों बार 'किस' किया होगा, मगर एक थप्पड़ खाते ही तुम्हारा इश्क ऐसा

रफूचक्कर हुआ कि तुमने झूठ की सलीब पर उसे और उसके भविष्य को ठोक दिया, आखिर क्यों? मैं उसे जवाब नहीं देना चाहती थी, लेकिन सच तो यह था कि मैं तुमसे इतना कुछ पा चुकी थी कि बोर हो उठी थी...हमेशा की तरह मुझे ज़िंदगी में नया कुछ जीना था। मेरे इस उतावलेपन को मेरी माँ और नानी ने शह दी....।''(वही, पृष्ठ 419-420)

यहाँ लेखिका ने नस्लवाद/रंगभेद की बात उठाई है और दोंनों तरह के (पक्ष/प्रतिपक्ष) तर्क दिए हैं, इस पर भी कुछ गोरों की इंसानियत के बावजूद यह समस्या तो है ही। साथ ही पश्चिमी नारी जगत की पुरुष संबंधी सोच को व्यक्त किया है।

पाँच सौ पृष्ठों से अधिक के इस उपन्यास में उन लोगों के लिए नसीहत है, जिन्होंने व्यक्तिगत जीवन की विसंगतियों/बेदारियों के भँवर में अपनी ज़िंदगी गारत कर रक्खी है। वे इन झमेलों से निकलने में ही तन-मन-धन से लगे हैं, इससे आगे भी दुनिया है, दुनिया के लिए भी कुछ फर्ज़ हैं, कुछ चुकाए जाने वाले ऋण है, इस तरफ वे सोचते तक नहीं! ऐसे ही लोगों को अपनी संस्कृति स्थानीयता और मातृभूमि के लिए कुछ कर गुज़रने की प्रेरणा है इस उपन्यास में! साथ ही यह फलसफा कि सुख-सुविधाओं में सिमट शरीर तक निर्मित रहना ही ज़िंदगी नहीं है, न ही कोई इंसान यह दावा कर सकता है कि सर्वरूपेण सुखी है! ज़िंदगी खुशी गम, चाहत और राहत के दोराहों का नाम है। ऐसे में इंसान इन्हें बेजा तवज्जों ऐसा काम कर सकता है, जिन पर देश, दुनिया, समाज और आने वाली नस्लें गर्व कर सकें जिन कामों से समाज और देश से उऋण हो सके। जैसे फिरदौस जहाँ, जैसे रूही, जैसे प्रोफेसर प्रहलाद दत्त, जैसे रोहन...।

बीबी फिरदौस जहाँ ने अपनी लाचारियों से दोस्ती कर ली है। इसीलिये उन्हें नहीं मलाल कि वे चलने-फिरने में असमर्थ हैं या व्हीलचेयर ही उनकी गति है या घर की चारदीवारी में वे नज़रबंद जैसी हालत में हैं। वे समय-समय पर डायरी लिखती हैं। इसमें वे निजी सुख- दुःख, नस्ली रवायतें, अपने शहर लखनऊ के बादशाहों की बादशाहत, उनकी मजहबी खिदमत, उनके बदलते वक्त की कई करवटों को दर्ज करती हैं। रूहानी पंथ के पीर, फकीरों, पैगम्बरों का सांस्कृतिक इतिहास दर्ज करना नहीं भूलती! मर्सिया, ग़ज़ल, ठुमरी, पक्के रागों के 'घराने' 'डेरेदार तवायफों'...आदि की एक से एक नज़ीरें लिखती हैं। सच पूछा जाये तो फिरदौस के माध्यम से उपन्यास में 'सांस्कृतिक इतिहास' चित्रित किया है लेखिका ने। प्रोफेसर प्रहलाद दत्त तथा उनके बेटे कथानायक रोहन दत्त के माध्यम से भी नासिरा जी ने हिंदोस्तान की गंगा जमुनी संस्कृति तथा इस्लामिक तवारीखों का अंकन किया है।

ज़िंदादिली को अपने दामन में समेटे फिरदौस जहाँ कभी सखी और पड़ोसिन सरस्वती के साथ ताश खेलती हैं, कभी अपनी पुरानी खादिमा को बुलाकर उससे, पुराने जमाने की बातें करती हैं। वृद्धा फिरदौस इतनी बड़ी कोठी में अकेली रहती है, बावजूद इसके बहू बेटों के पास बसना नहीं चाहतीं। यही हाल उनकी पड़ोसिन वृद्धा सरस्वती का भी हैं वृद्धावस्था की कटु सच्चाइयाँ तथा बेमुरौव्वत संतान की तंगदिली की ओर संकेत करता उपन्यास एक अहं और मौजूदा मसले की तरफ संकेत करता है। साथ ही यह भी कि विवेक से यदि काम लिया जाय, संतान के व्यामोह को दरकिनार कर कुछ सोचा जाय तो वृद्धावस्था बहुत आराम और चैन के साथ बसर हो सकती है। संतानों के लाख कहने पर भी न फिरदौस जहाँ ने लखनऊ छोड़ा न सरस्वती ने। वे अपने मन प्राणों में बसे लखनऊ, उसकी गंगा जमुनी संस्कृति से दिल से मुहब्बत करती है। उन्होंने अपनी किताब के लिए नायाब विवरण संजोया है, जो देश के हर हिंदू-मुसलमान के लिए ज्वलंत प्रेरक सबक है-''मुंशी जगन नाथ 'अतहर' ने रामायण का बेहतरीन तर्जुमा करके इस मुकद्दस किताब के मतालिब का उर्दूदानों के लिए न सिर्फ एक

बेशकीमती तोहफा पेश किया है, बल्कि तुर्जमा जबान व बयान के एतबार से एक आला दरजा तसनीफ भी हैं। इसी तरह मुंशी जगननाथ 'खुशतर' और मुंशी शंकरदयाल 'फरहत' ने भी रामायण का बहुत अच्छी नज़्म में तर्जुमा किया है। इन दोनों बुर्जुगों ने हिंदू धर्म की कई दूसरी अहम् किताबों के भी तर्जुमें किए है, जो उर्दू में वेशबहा इजाफे की हैसियत रखते है। मुंशीराम सहाय 'तमन्ना' ने 'भगवद्गीता' और मुंशी तोताराम 'शायान' ने 'महाभारत' के बेहतरीन तर्जुमें किए थे। हिंदू शोअरा ने अपनी खूबियों के जौहर शायरी के हर मैदान में दिखाए हैं। नज़्म, नात, कसीदे लिखे हैं, जिनमें राजा रत्नसिंह जख्मी का नाम सबसे ऊपर है। इनकी फ़ारसी कुल्लियात में हफ्तबंद और कसायद भी मौजूद है। उनका कलाम आगाह करता है कि उनकी तहरीरों में अकीदत को भी मुकाम हासिल था। सल्तनत के खात्में के कुछ मुद्दत के बाद ऐसी नज़्मों और कसीदों का सिलसिला नज़र नहीं आता, लेकिन हिंदू शोअरा की मीरासी, सोजखानी और नौहा से लगाव तकरीबन पचास बरस पहले तक बरकरार था।''(वही, पृष्ठ-446-447)

अपनी आने वाली किताब में फिरदौस जहाँ ने पत्रात्मक शैली में रूही की यादों में बसे लखनऊ की कई महत्त्वपूर्ण सच्चाइयों से रू-ब-रू कराया है। ''आज मैं तुम्हें ऐसी औरतों के बारे में बताऊँगी, जो अपने जमाने की अहम् और जानदार शख्सियतें थीं। तवायफों के रक्स तुमने फ़िल्मों में देखे होंगे, यहाँ मैं उनकी सामाजिक ज़रूरत और कल्चरल ताने-बाने का ज़िक्र करना चाहती हूँ'.....'डेरेदार तवायफें दर हकीकत बाकी दूसरी किस्मों की तरह जिस्मफरोशी का धंधा नहीं करती थीं। फन और अदब की खूबियों के साथ इनका किरदार भी मजबूत और बुलंद होता था। तभी अक्सर तवायफों को घर के जनानखाने में जाने की इजाज़त थी। एक तवायफ अपनी ज़िंदगी में किसी एक या दो की मुलाजमतें कुबूल करती थी। बाद में किसी शरीफ से शादी कर नेक ज़िंदगी गुज़ारती थी। असल में लखनऊ के उस दौर में फ़न और अदब जिस तरह परवान चढ़ रहे थे, वे उसी की देन थी। यही वजह थी कि जैसे ही वह दौर रईसों व ताल्लुकेदारों का खत्म हुआ, इनका वजूद भी बाकी रस्म व रिवाज, कला-परंपरा और अदब के अंदाज की तरह दम तोड़ गया और किसी और शक्ल में नहीं उभरा, क्योंकि इन औरतों की एक खूबी यह भी रही है कि ये अपने पालने वालों और प्रशंसकों के प्रति बहुत वफादार थी। इनका उद्देश्य 'सेक्स' तक महदूद न था, बल्कि उस दौर की संस्कृति को एक खास तरह से सँभालने और उसको कलात्मक रूप में विकसित करना था। आज यह बात शायद ही कोई कुबूल करे कि बरसों तक कोठो पर जाने वाले रईसों व तवायफों के बीच दोस्ती, हमदर्दी तोहफे-तहायफ, घर का पूरा खर्चा देना, शेरो शयरी, हाज़िर-जवाबी, रात-दिन की महफिलों में शिरकत के बावजूद उनके ताल्लुक 'जिस्म' से परे थे। इस सिलसिले से नवाब अली बहादुर और हैदरजान के ताल्लुकात की मिसाल दी जा सकती है।'' (वही, पृष्ठ-334)

लेखिका ने नवाब महमूदाबाद तथा रक्कासा नन्हवा एवं बचवा के रोचक किस्से के साथ उस समय की लखनवी मौसीकी का बेहद दिलचस्प उल्लेख किया है-''मौसीकी के फ़न में अजीमन, नजीजान बब्बन, नूरजहाँ, जहरा, मुश्तरी, कल्लन, जद्दन को कमाल हासिल था। वहीं वे बाज राग-रागनियों में ग़ज़ल गाने में मुमजात थीं। चौधराइन, हरसो, बड़ी जद्दन और कल्लन मर्सियाख्वानी और नौहा पढ़ने में अपनी मिसाल आप थी। वे तवायफें अपने ताजियों के साथ मर्सिया पढ़ती थीं तो सड़कों पर रास्ते बंद हो जाते थे; जाम लग जाता था'.....'घोड़े की बेहतरीन शहसवार, साइकिल बहुत तेज़ चलातीं और पतंग उड़ाने में बहुतों से आगे, उस तब्काती दौर में रईस व शोरफा उनसे पेंच लड़ाना बुरा नहीं समझते थे।''(वही, पृ. 335-336)

एक तरफ इस तरह के विवरण उपन्यास को तथ्यपूर्ण एवं रोचक बनाते हैं, तो दूसरी तरफ

दत्त 'मोहयाल' और 'दत्त' परक शोध इसे ऐतिहासिक तो बनाते ही हैं, एक व्यापक परिदृश्य से भी जुड़ता है, जिनमें से कुछेक बाद में बेबीलोन में राजा बन गए थे। दूसरा सिरा मुहम्मद साहब तथा हुसैन से जुड़ता है। यही कभी 'दाता' कभी आदित्य से जुड़ा दिखाई पड़ता है। यह सम्पूर्ण जातीय इतिहास नासिरा शर्मा की तत्संबंधी सघन गंभीरता, कर्मठता, लगाव घोषित करने के साथ ही उपन्यास का एक विशिष्ट पाठ प्रस्तुत करता है।

पीढ़ियाँ किस तरह से अपने जातीय इतिहास/गौरव/अस्मिता से जुड़ती है या जोड़ी जाती हैं यह इस कृति में देखा जा सकता है। मोहियाल या दत्त के बीजोतिहास को कुछ अंशों में प्रहलाद दत्त अपने पुत्र रोहन को बतलाते हैं। इससे प्रेरित होकर रोहन दुहियाँ के देशों में जहाँ भी गया, वहाँ उसने दत्त/मोहियालों के उद्‌गम स्त्रोतों की जी जान से खोज की और सफल भी रहा। मोहियालों के वैशिष्ट्य, उनके प्रतीक वाक्य, 'फखरे कौम' तथा 'न हिंदू न मुसलमान' में से रोहन के मुँह पर 'न हिंदू न मुसलमान' चढ़ गया था। उसकी दिली तमन्ना थी कि दत्त/मोहियालों का यह गरिमापूर्ण इतिहास बेटे पारिजात को भी मालूम हो। वह एक बेहद मार्मिक पत्र में तफ्सील से जातीय इतिहास को दर्ज करके कम्प्यूटर में डाल देता है, इस उम्मीद से कि कभी तो यह पारिजात तक पहुँच ही जायेगा। पत्र के अंत में वह लिखता है-'मेरे जिगर के टुकड़े! सब कहते हैं कि तुम दिखने में मेरी तरह हो। पता नहीं बड़े होकर कैसे निकलो। इस वेबसाइट को बनाने का मेरा उद्‌देश्य सिर्फ इतना है कि तुम देखो या कोई और जो भी देखे उसे पता चल जाए कि तुम्हारा बाप कौन है। तुम भारत जैसे विशाल देश में जहाँ विभिन्नता है, उसमें तुम्हारा घर-परिवार कहाँ था और तस्वीरें देख पता लगा सकते हो कि तुम्हारे बाबा तुमको कितना प्यार करते थे। साथ में बहुत-सी और सूचनाएँ भी हैं, जिन्हें ध्यान से पढ़ना, जो तुम्हें वैसा बनने नहीं देंगी जो आज उस इलाके के जवान बन रहे हैं। मुझे यकीन है, तुम इनसानों से रंग, नस्ल, धर्म, विचारधारा को लेकर शत्रुता नहीं पालोगे'.....''तुम इन्सान की शक्ल में आदमी बने रहना।'' (वही, पृष्ठ-382) जातीय इतिहास इसी तरह पीढ़ी हस्तान्तरित होता है।

पारिजात उपन्यास में जगह-जगह उन रवायतों का ज़िक्र कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, जिनकी रवानगी इंसानी दिलों को दुनियावी, रूहानी सुकून, सुख और आनंद से भर देती हैं। फिरदौस जहाँ को जोहरा बी से इन रवायतों की चर्चा करना बेहद पसंद है। ये रवायतें हैं भी हरदिल अजीज़ चाहे ये मौसीकी की हों, 'हल्के गानों' की हों या ग़ज़ल या मर्सियाख्वानी या नौहाख्वानी की हों। किस तरह से बाहरी मुल्कों से ये देश में आईं और यहीं के रंग में रंग गईं। फिरदौस, जोहरा बी से बतला रही है-''कव्वाली इराकी संगीत की नकल थी। हिंदुस्तान क्या आई, यहाँ के रंग में रंग गई। अब तो यह सौ फीसदी हमारी ईजाद लगती है। कव्वाली को सुफिया इकराम की सरपरस्ती की बदौलत फरोग मिला। सरपरस्ती का यह बलवला आहदे शुराउद्‌दीला से लेकर अहदे आसिफउद्‌दौला तक खूब चला। उनकी लिखवाई एक किताब भी मौसीकी पर है। भला-सा नाम था, हाँ, याद आया 'उसूले अललूगात अलसैफा'। किताब फ़ारसी में थी। कहते हैं, इससे बढ़िया किताब इस फ़न पर कोई दूसरी आज तक नहीं है'. ...'शोरी ने गाज़ीउद्‌दीन हैदर के जमाने में 'टप्पे का राग' इजाज किया था। दूसरा नाम हैदरी खाँ का याद आ रहा है।''.....''सल्तनत अवध के छिन जाने के बाद कदीम लखनऊ के आखिरी दौर में मौसीकी का सारा कमाल तवायफों में सिमट आया था। मर्दों में जो लोग हुनरमंद थे। वह उन तवायफों को तालीम देने लगे।.... वह गोशानशीन हो गए, मगर कभी-कभी अमीरों और रईसों की खास महफिलों में खुसूसी दावतनामें पर जाते थे। यही लोग ऐसे उस्तादों से गाना व मौसीकी सीखते थे। इन्हें अपना उस्ताद कहते थे। मगर उन दिनों

तुम्हें ज़रूर याद होगा कि रईसों की महफिलें हों या तवायफों के मुजरे, हर जगह वाजिद अलीशाह की ईजाद की हुई राग-रागरियों का तरीका हरदिल अजीज़ हो गया, जिसको हल्का गाना कहते थे। इसी तर्ज़ और मुखतलिफ रागनियों में सोजख्वान मर्सिये पढ़ते थे। घरों में औरतें नौहा पढ़ती थीं। शादी-ब्याह में डोमनियों गाना गाती थीं।(वही, पृष्ठ-339-340)

हालाँकि फिरदौस जहाँ एक तरह से इन खुसूसियतों में दिल से जीती थीं, मगर आज के दौर में ....ज़ोहरा बी के उनकी किसी भी सखी को इनमें दिलचस्पी नहीं थी। यही कारण था कि जब उन्हें बहुत बेचैनी या उलझन होने लगती या पुराने वक्तों की बातें करने का जी होता तो वे जोहरा बी को बुलवा भेजती थीं। दरअसल जोहरा बी की वल्दियत की कड़ियों के तार कहीं पर इन रवायतों से जुड़े थे, स्वयं जोहरा को बीते जमाने की इन बातों में दिलचस्पी थी। सो दोनों बीमार मिल बैठकर बतिया लेती थीं। उनकी बातों में शाहे वक्त के दौर के तरह-तरह के व्यंजनों, मिठाइयों, सब्जियों, दावतों और खास किस्म के खानों का भी ज़िक्र होता था, खास तरह के चलनों की ईजाद का भी, जैसे-''अवध के हुक्मरान थे तो ईरानी नस्ल के मगर जो तहजीब और माशरत उन्होंने ईजाद की थी न वह ईरानी थी, न अरबी, वह खालिस लखनउवा तहजीब थी। बतौर मिसाल दूसरे मुसलमान मुल्कों की तरह यहाँ के हिंदुस्तानी मुसलमान लखनऊ को छोड़ दूसरे सूबों के सलाम अलैकुम कहते हैं, मगर लखनऊ में अपनी जुबान में सलाम करने का चलन चला और इस सलाम के लिए मुख्तलिफ अलफाज बनाए गए। यानी आदाब, तस्लीम, बंदगी, तस्लीमात, कारनिश, मुजरे के साथ अर्ज करता हूँ, बजा लाता हूँ का रियाज था। आदाब, तस्लीम, बंदगी का आज भी चलन है।''(वही, पृष्ठ-342-343)

.....''जाड़े के दिनों में तनकी व नमश या नाग व नहारी और गर्मियों में गवजबान व बालाई बेहतरीन व लजीज खाने थे। बालाई लखनऊ की मशहूर थी। बाहर से आने वाले, मिर्जा वाली दुकान से बालाई की गिलोरियाँ अपने घर और दोस्तों के लिए बतौर तोहफा ले जाना नहीं भूलते थे। बालाई को शुरू में 'मलाई' कहा जाता था। दही को पहले 'देइही' कहा जाता था। ये दोनों लफ़्ज़ शाहअवध नसीरूउद्दीन हैदर ने बालाई और दही में बदल डाला, जो आज तक चला आ रहा है''(वही, पृष्ठ-341-342)

इस तरह की रवायतों के विवरण वहाँ भी हैं, जहाँ रोहन अपनी खोज के दौरान लोगों से दरियाफ्त करता कामिल, रौदा, सादिक और सफीर के संपर्क में आता है।

ये लोग रोहन की (ताजियों की शुरुआत कैसे हुई, कामिल, शैदा, सादिक) जिज्ञासा का समाधान करने के लिए तफ्सील से उसे बताते हैं कि हिंदुस्तान में ताजियों की शुरुआत कैसे हुई, किसने की....। इसी के दौरान वे गंगा जमुनी हिंदुस्तानियत को अनावृत्त करते बीते जमाने की कई महत्त्वपूर्ण बातों का ज़िक्र करते हैं। वे यह भी बतलाते है कि ''इन लखनऊ वालों की तो मियाँ बात ही निराली है, यहाँ तो कहते हैं कि हर मजहब व मिल्लत और हर तबके के लोग ताजियादार थे। क्या यह बात सही लगेगी सुनने वालों को?.....क्या बहारें थीं, क्या रंग और फन था. मियाँ। सोचोहलवाई शक्कर और बताशो के, फुर्जी जौ और मटर के, दर्जी कतरनों के, चिकनसाज चिकन के काम के, मनिहार चूड़ियों के, कुम्हार मिट्टी के, नद्दाफ खजूर और रूई के और बढ़ई लकड़ी के, यही नहीं पीतल, राँगे और मीनाकारी के भी ताजिए बनते थे। इनके अलावा सबसे ज्यादा तादाद सियाह सुर्ख सब्ज, सफेद काग़ज़ों के बने ताजियों की थी, जो अपने नामों से भी मशहूर थे, गजब के खूबसूरत और बड़े लुभावने होते थे। चौथी से छठी मोहर्रम तक ये ताजिए अपनी तयशुदा तारीखों पर निकाले जाते थे, फिर एक तयशुदा मुकाम पर सजा दिए जाते थे, फिर आशूरे और चालीसवें के दिन शहर में गश्त कराया जाता था।'' (वही, पृष्ठ-265)

ताजियों का, मर्सिया ख्वानी और मार्मिक नौहे गाती हिंदू-मुस्लिम आबादी का हृदयस्पर्शी

चित्रण बेहद प्रभावी ढंग से वहाँ भी उल्लिखित है, जहाँ प्रोफेसर प्रहलाद दत्त कार्यवश मुहर्रम के महीने में उ. प्र. के किसी गाँव में जाते है। वहाँ भी मौसीकी का अंकन है, जब रूही ससुराल के गाँव में जाती है। चूँकि रूही के ससुर जुल्फिकार लखनऊ के पुराने रईस हैं, नजदीक के गाँव में ही उनकी कोठी, जमीन-जायजाद और कामगीर रैयत है। रूही जब रोहन के साथ अपने खानदानी 'अली ट्रस्ट' की बैठक के लिए गाँव आती है, तब वहाँ वे अपनी कोठी में रुकते हैं। उनके मनोरंजन के लिए मिरासिन का पूरा परिवार कृत संकल्प हो उठता है। कोठी में रुकते हैं। उनके मनोरंजन के लिए मिरासिन का पूरा परिवार कृत संकल्प हो उठता है। इस मिरासिन को पीढ़ियों से रूही के ससुरालीजनों ने अपने यहाँ पनाह दे रक्खी थी। ये मिरासी मौसीकी के फ़न के उस्ताद थे। इनका सारा फ़न अपने मालिकों को प्रसन्न करने के वास्ते था। यही उनकी रोजी-रोटी भी थी। रूही के आने के बाद बाकायदा महफिल सजी और 'जहरे इश्क की गीत ड्रामा' रूही तथा रोहन को न जाने किन-किन खट्टी-मीठी यादों में डुबो गया। अपनी दिलकश आवाज़ में पूरे मिरासी परिवार ने अजब समां बांध दिया। यहाँ एक बार फिर अभिजात वर्ग को उसके पूरे तौर तरीकों में पेश करने के लिए नासिरा शर्मा की किस्सागोई के फन को सलाम करना पड़ेगा। नासिरा जी ऐसा बाँधती हैं जिसमें रूमानियत रूहानियत और रूहें एक साथ पैबस्त हैं।

पारिजात का कथा सूत्र रूही, काजिम और रोहन की मित्रता को तो दर्शाता ही है। इन तीनों के पिताओं की दाँतकाटी दोस्ती को भी बयां करता है। रूही और काजिम का विवाह हो तो गया, मगर बहुत कम समय में ही काजिम का इंतकाल हो गया। काजिम के पिता जुल्फ़िकार की मौत के बाद रूही बिल्कुल तन्हा हो गई, इतनी बड़ी कोठी में। उधर रूही के पिता की मौत ने माँ फिरदौस को भी निपट एकाकीपन दे दिया। रोहन की माता के गुज़र जाने के बाद पिता प्रोफेसर प्रहलाद दत्त हो गये। रोहन विदेश में था, वहाँ पत्नी ऐलेसन उसे छोड़ गई पुत्र को साथ ले गई। आपदाओं का यह सिलसिला तीनों परिवारों में एक ही वक्त पर चला, इसलिए एक दूसरे के दिली गमों की कौन पूछता, जबकि इनमें से हरेक अपने पर पड़ी इस खुदाई आफत से बेजार था।

धीरे-धीरे जब वे परस्पर मिलते है, तब उन्हें एक दूसरे की गहरी उदासी और टूटन का भास होता है। रूही के एक सही कदम से उन सबों में एक बार फिर जीने का हौसला अंगड़ाई लेने लगता है। प्रोफेसर प्रहलाद जब रूही और रोहन के विवाह की बात सुनते हैं, तब प्रसन्नता और हर्ष के आवेग से भर उठते हैं, दिल से बेटे रोहन को 'फखरे कौम' कह गले लगा लेते हैं। इस सुखांत उपन्यास में इतने और ऐसे दुखद मोड़ हैं कि 'सुखांत के बाद भी टीसते रहते हैं, यह टीसन किसी भी कृति को कालजयी मूल्यबोध से संपृक्त करती है।

लाल कोठी और सफेद कोठी के नौकर चाकर, उनकी संतानों के प्रेम प्रसंग, गुरु शिष्य का अद्‌भुत रिश्ता, रियाज का प्रेम, मारिया की दोस्ती, ये सारे प्रसंग उपन्यास को पठनीय तो बनाते ही हैं। विशिष्ट अर्थों में पुनर्पाठ की गुंजाइश भी रखते है। भाषा बेहद सरस है यथानुसार उर्दू, फारसी, अंग्रेज़ी के साथ ही हिन्दी की तत्सम, तद्‌भव शब्दावलियों को लिए हुए है अपनी तीनों शक्तियों के साथ। ''पुरानी यादों के रेशमी लच्छे उलझे-सुलझे दोनों कभी खोलते तो कभी लपेटने लगते'' (वही, पृष्ठ-359).....''बूढ़ी आँखें जवानी के चढ़ते रंग पहचानने में भूल कैसे कर सकती थी'' (वही, पृष्ठ-357).....''बादल आँखों में पूरी कजलौटी पोते आते और पसीना पोंछते'' (वही, पृष्ठ-10).....आदि प्रयोग भाषा को अर्थ गौरव के साथ खूबसूरती प्रदान करते हैं। बड़े-बड़े फनकारों की मर्सियों, नौहें, दहा, ग़ज़लें, मसनवी शैली के गीत पारिजात को पारिजात की भाँति दुर्लभ बनाते हैं। संक्षिप्ततः कहा जा सकता है कि गंगा जमुनी या हिंदू-मुस्लिम तहजीब के सांस्कृतिक प्रतिबिंब के रूप में 'पारिजात' हिन्दी साहित्य के साम्प्रतिक दौर का अविस्मरणीय उपन्यास है।